एम.ए.एच.आई. –04

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.ए. पाठ्यक्रम
(इतिहास)

एम.ए.एच.आई. - 04

ऐतिहासिक चिन्तन – 2

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.ए. पाठ्यक्रम
(इतिहास)

खण्ड-2

इकाई संख्या

इकाई 5	
चीनी इतिहास लेखन की भूमिका और उसका स्वरूप	5–20
इकाई 6	
अरबी एवं इस्लामी इतिहास लेखन की परम्परायें	21–28
इकाई 7	
ईसाई धर्म व इतिहास चिन्तन	29–46
इकाई 8	
रॉके के विशेष संदर्भ में इतिहास दर्शन की निश्चयात्मक अभिगम	47–54
इकाई 9	
इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या (मार्क्सवादी सिद्धान्त)	55–70

पाठ्यक्रम विकास समिति

प्रो. बी.एस. शर्मा, कुलपति (अध्यक्ष)

प्रो. रविन्द्र कुमार
निदेशक, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं
पुस्तकालय, नई दिल्ली

प्रो. एस.पी. गुप्ता
इतिहास विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम
विश्वविद्यालय, अलीगढ़

प्रो. के.एस. गुप्ता
पूर्व इतिहास विभागाध्यक्ष मोहन लाल
सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

डा. श्रीमती कमलेश शर्मा
इतिहास विभाग, कोटा खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो. बी.आर. ग्रोवर
पूर्व निदेशक, भारतीय इतिहास
अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

प्रो. जे.पी. मिश्रा
पूर्व इतिहास विभागाध्यक्ष, काशी हिन्दू
विश्वविद्यालय, वाराणसी

डा. बी.के. शर्मा
विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग कोटा
खुला विश्वविद्यालय, कोटा

डा. याकूब अली खान
इतिहास विभाग कोटा खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम निर्माण दल

डा. कमलशील
विभागाध्यक्ष, चीनी अध्ययन विभाग, काशी
हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डा. कमल नयन
वरिष्ठ व्याख्याता, एम.एस.जे. कॉलेज,
भरतपुर

डा. ब्रजकिशोर शर्मा
विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग कोटा खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

डा. बी.एल. गुप्ता
एसोसियेट प्रोफेसर, इतिहास विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

डा. ललित पाण्डेय
सहायक निदेशक, साहित्य संस्थान
राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर

पाठ्यक्रम प्रभारी एवं सम्पादक

डा. बृजकिशोर शर्मा
विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो.(डॉ.)बी.के. शर्मा
निदेशक(**अकादमिक**)
संकाय विभाग

योगेन्द्र गोयल
प्रभारी अधिकारी
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुनः उत्पादन-मार्च 2011 MAHI-04/ISBN No.-13/978-81-8496-263-5

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

इकाई - 5

चीनी इतिहास लेखन की भूमिका और उसका स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 इतिहास लेखन परम्परा की उत्पत्ति

5.3 कनफूसियसवाद और इतिहास लेखन

5.4 विवरणात्मक इतिहास लेखन का विकास

5.5 वृहद् इतिहास लेखन परम्परा का प्रादुर्भाव एवं विकास

5.5.1 पान कू (32-12 ई..पू.)

5.6 आधिकारिक इतिहास लेखन का विकास

5.7 विश्लेषणात्मक व आलोचनात्मक इतिहास लेखन

5.8 चीनी इतिहास लेखन परम्परा की विशेषताएँ

5.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.10 संदर्भ ग्रन्थ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप चीनी इतिहास लेखन की परम्परा को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझने में समर्थ होंगे। चीनी इतिहास लेखन की परम्परा का विकास समझाना इस का प्रमुख उद्देश्य है। इतिहास लेखन की वैज्ञानिक प्रवृत्तियों को समझने में भी यह इकाई सहायक होगी।

5.1 प्रस्तावना

चीन में प्राचीन काल से ही इतिहास लेखन एवं अध्ययन ज्ञान का प्रमुख विषय था। एक शिक्षित व्यक्ति के लिए इतिहास का ज्ञान आवश्यक था। वहाँ की परम्परागत शिक्षा प्रणाली में तथा शासकीय पदों के चयनार्थ परीक्षाओं के लिए इतिहास एक अनिवार्य विषय था। वहाँ के राजनैतिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक परिवेश का यह एक अभिन्न अंग था। इसीलिए वहाँ सभ्यता के प्रारम्भ से ही इतिहास लेखन व अध्ययन शासक-वर्ग तथा शिक्षित वर्ग के कार्य-कलापों से सम्बन्धित रहा और इन्हीं की छत्रछाया में निरन्तर विकसित हुआ। चीनी इतिहास लेखन-परम्परा को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि इसकी उत्पत्ति और विकास के क्या-क्या आयाम थे? वहाँ के मुख्य इतिहासकार कौन थे? और उन्होंने चीनी इतिहास-लेखन-परम्परा के विकास में क्या योगदान दिया? अन्त में पाश्चात्य या तथाकथित "वैज्ञानिक-इतिहास-लेखन की तुलना में चीनी-इतिहास-लेखन-परम्परा की क्या विशेषताएं थी?

5.2 इतिहास-लेखन-परम्परा की उत्पत्ति

चीन में इतिहास-लेखन-परम्परा का प्रारम्भ हनान् प्रान्त के आन् यार्ड शहर में पुरातात्विक अन्वेषण में प्राप्त हड्डियों पर उल्लिखित ऐतिहासिक विवरणों से माना जाता है। ये

उल्लिखित हड्डियां सर्वप्रथम 1899 ई० में प्राप्त हुई थी। इसके बाद इस तरह की कई हड्डियां बाद के विभिन्न पुरातात्विक अन्वेषणों में प्राप्त हुईं। इनमें लगभग 4,500 चीनी वर्णमाला के अक्षर (Character) मिले जिनमें से 1,700 की अब तक पहचान की जा चुकी है। प्रत्येक हड्डी पर 10-15 से लेकर 100 तक अक्षर अंकित हैं। ये अधिकतर तत्कालीन शासक-परिवारों की विभिन्न गतिविधियों का उल्लेख करती हैं।

इन हड्डियों पर लेखाकंन मुख्यत: दैविक शक्तियों के आह्वान के लिए होता था। इन पर समकालीन घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में प्रश्न और उत्तर अंकित किया जाता था।

इसके पश्चात् इनको किसी स्थान विशेष पर गर्म किया जाता था और इससे इसमें चटकाव से जो रेखाएं बनती थी उसके स्वरूप के आधार पर घटनाओं की दैविक शक्तियों के अच्छे या बुरे प्रभाव की व्याख्या की जाती थी। चूँकि ये हड्डियां धार्मिक अनुष्ठानों में प्रयोग की जाती थी इसलिए इन्हें भविष्य-सूचक-अस्थि-अभिलेख कहा जाता है। इनका काल 16 से 11 शती ई० पू० माना जाता है। ये नि:सन्देह चीन के प्राचीनतम ऐतिहासिक विवरण हैं। वहाँ के शाङ् वंश के अध्ययन के लिए ये प्रमुख लिखित ऐतिहासिक स्त्रोत हैं।

शाङ् वंश के उत्तरार्द्ध तथा चौउ वंश के प्रारम्भ होते-होते भविष्य-सूचक-अस्थि-अभिलेखों का स्थान ताम्रपत्राकिंत-अमिलेखों ने ले लिया। ये अभिलेख चिन् वन्' (ताम्र-अभिलख) या "चौड् तीड् वन्" (प्राचीन ताम्र-अभिलेख) के नाम से जाने जाते हैं। पुरातात्विक अन्वेषणों में शाङ् काल की तुलना में चौड् काल के अभिलेख अधिक मात्रा में प्राप्त हुए हैं। इन पर अंकित अक्षरों की संख्या भी 'भविष्य-सुचक-अस्थि-अभिलेख (Oracle bones) की तुलना में ज्यादा हैं। जिनमें अधिकांश समकालीन प्रमुख उपलब्धियों तथा शासक वर्ग द्वार प्रादत्त दान व पुरस्कारों की प्रशंसा के सन्दर्भ में लिखे गये हैं। इसके अतिरिक्त इनमें विस्तृत रूप से तत्कालीन युद्ध अभियानों, युद्ध बन्दियों और प्रमुख व्यक्तियों को पुरस्कार के रूप में दिए गये सेवक, गुलाम, भू-खण्ड, रथ-धोडे, सोने व हड्डियों के पात्रों तथा विशेष राजसी झंडे, वस्त्र आदि का उल्लेख है। कई अभिलेखों में युद्ध की परिस्थितियों और व्यक्तियों को पुरस्कृत करने के कारणों का भी क्रमबद्ध वर्णन है। कहीं-कहीं वर्ष, महीना और दिन भी अंकित है। इन अभिलेखों में अधिकतर अन्तिम पंक्ति में "परवर्ती (भावी) पीढ़ियो के लिए शाश्वत-संरक्षित" लिखा होता है। इससे ज्ञात होता है कि इनका मुख्य उद्देश्य इन विवरणों को दृष्टांत की तरह भावी पीढ़ियों के लिए संरक्षित करना था। ये अभिलेख ऐतिहासिक लेखन की दृष्टि से' भविष्य-सूचक-अस्थि-अभिलेखों की परम्परा से निश्चित रूप से ज्यादा विकसित थे।

चौउ काल में ताम्र-अभिलेखों के अतिरिक्त बांस की पट्टियों और रेशम के कपड़ो पर भी प्राचीनतम इतिहास सम्बन्धी विवरण लिखने की प्रथा का प्रारम्भ हुआ। चीन के दो प्रमुख ऐतिहासिक ग्रंथ "इतिहास-पुस्तक" (Book of History शाङ् शू) और "सम्बोध-गीति-पुस्तक" (Books of Ods शीर चीड.) के अंश इसी पर मिलते हैं। "इतिहास पुस्तक" में शाङ्. काल से ले कर पश्चिमी चौउ काल के 'बसंत-शरद् काल' के राजनैतिक दस्तावेजों, प्रमुख व्यक्तियों के कार्य-कलापों और उनसे सम्बन्धित घटनाओं पर विज्ञप्तियों का संग्रह है। सबोध-गीति-पुस्तक' में पश्चिमी चौउ काल के बसन्त-शरद-काल की प्रमुख घटनाओं और राज्य द्वारा आयोजित धार्मिक

अनुष्ठानों क उल्लेख है। यद्यपि इनमें "भविष्य-सूचक-अस्थि-अभिलेखों" और ताम्र-अभिलेखों की तरह घटनाओं का क्रमबद्ध विवरण नहीं मिलता, फिर भी इनकी पृथक घटनाओं को ऐतिहासिक दृष्टिकोण से लिपिबद्ध करने की चेष्टा ने चीन में इतिहास लेखन की उत्पत्ति में विशेष योगदान दिया।

प्राचीन काल के इन विभिन्न प्रकार के लिखित विवरणों से क्रमबद्ध वंशानुगत इतिहास-लेखन का प्रयास पश्चिमी चौउ काल के अन्त (841 ई० पू०) से प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार इन लिखित विवरणों का न केवल चीन के दर्शन, साहित्य और राजनैतिक विचारों पर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा अपितु इतिहास-लेखन की विशिष्ट परम्परा की उत्पत्ति में महत्वपूर्ण योगदान भी रहा। लेकिन इन छुटपुट विवरणों के आधार पर इतिहास-लेखन को एक शास्त्र के रूप में विकसित करने का श्रेय चीन के प्रसिद्ध दार्शनिक व विचारक कन्फूसियस को जाता है।

5.3 कन्फूसियसवाद और इतिहास-लेखन

चीनी सभ्यता के सर्वांगीण विकास में कन्फूसियस और कन्फसियसवाद का योगदान सबसे महत्वपूर्ण है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि विश्व की किसी भी सभ्यता में किसी एक दार्शनिक और विचारक का उतना योगदान नहीं है जितना कि चीन की सभ्यता के सभी पहलुओं के विकास में कन्फूसियस का रहा। इसी कारण प्राचीन चीनी सभ्यता और कन्फूसियस को विद्वानों ने एक दूसरे का पूरक माना है। कन्फूसियस ने चीन के राजनैतिक, सामाजिक व दार्शनिक ढांचे की रचना करके विश्व की सभ्यताओं में चीन की सभ्यता की एक विशिष्ट पहचान बनायी। उसके सिद्धान्तों का प्रभाव बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ (4 मई 1919 के आन्दोलन तक) जब एक नये बुद्धिजीवी वर्ग ने कन्फूसियस पर प्रहारकरना शुरू कर दिया, तक अक्षुण्ण बना रहा।

महान् दार्शनिक व विचारक कस्फूसियस को नि:सन्देह चीन का। आदि-इतिहास-शासी भी कहा जा सकता है। इसने शाङ्. और चौउ काल में उत्पन्न इतिहास-लेखन-परम्परा को एक निश्चित स्वरूप प्रदान किया। चीन के परवर्ती इतिहास-लेखन-प्रणाली व शाल की परम्परा का विकास उसके द्वारा निर्धारित सीमाओं के अन्दर ही 19वीं शताब्दी तक होता रहा। कन्फूसियसवाद में' इतिहास व ऐतिहासिक घटनाओं के अध्ययन पर बहुत झुकाव है। कन्फूसियसवाद का समय चीन के इतिहास में विभिन्न राज्यों के आपस में घमासान युद्ध का काल था। पूर्ववर्ती काल की उपलब्धियों से प्रभावित, युद्ध-क्लांत चीन में एक सुव्यवस्थित राज्य और समाज की स्थापना की उद्देश्यपूर्ति के लिए कन्फूसियसवाद ने इतिहास का सहारा लिया। उसकी इतिहास के प्रति रुझान उसके सिद्धान्त के भावात्मक पहलुओं पर आधारित है।

कन्फूसियसवाद में व्यावहारिक और भावात्मक दोनों पहलुओं का मिश्रण मिलता है। जहाँ एक ओर इसका व्यावहारिक पहलू परिणामवादी सामाजिक, इहलौकिक और तार्किक एवं बौद्धिक दृष्टिकोण को प्रमुखता देता है वहीं दूसरी ओर इसका सशक्त भावात्मक पहलू परिवार, जाति और धर्म की निरन्तरता की रक्षा के लिए सजग रहता है। साथ ही साथ चीनी सभ्यता को बर्बर समाज से अलग करने वाले प्राचीन रीति-रिवाजों की अक्षुण्यता-के प्रति आसक्त है। इस भावात्मक आसक्ति ने ही कन्फूसियस को चीनी सभ्यता के परम्पराओं और प्रतीकों की रक्षा और निरन्तरता के लिए प्राचीन समाज के उदाहरणों और धार्मिक व सांस्कृतिक रीति-रिवाजों के

अध्ययन व लिपिबद्ध करने के लिए प्रेरित किया। इसी कारण कन्फूसियस ने प्राचीन चीनी समाज में निहित नैतिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में राजनीति व समाज के अध्ययन तथा लेखन को इतिहास का मुख्य उद्देश्य माना। इस प्रकार इतिहास नैतिक आधार पर राज्य व समाज की घटनाओं के विवेचन व विवरण का साधन बना। इतिहास ग्रंथों की नैतिक व आचार शास्त्र की भूमिका ने इसकी महत्ता को धार्मिक ग्रंथों के समकक्ष पहुंचा दिया। इसी आधार पर कन्फूसियस ने पूर्वज-पूजा और इनसे सम्बन्धित धार्मिक व सांस्कृतिक अनुष्ठानों की निरन्तरता के लिए राजकीय स्तर पर इसको लिपिबद्ध करवाने पर विशेष ध्यान दिया। ये अनुष्ठान अधिकतर राजा या राज्य की प्रमुख उपलब्धियों की स्मृति में कराये जाते थे इसलिए इनको लिपिबद्ध करने में उन। उपलब्धियों के विवरण पर भी जोर दिया गया। इस प्रकार क्रमबद्ध रूप से एक राजा और उसके राज्यकाल की प्रमुख घटनाओं का विवरण लिपिबद्ध होना शुरु हुए और इसी के साथ वंशानुगत इतिहास-लेखन-प्रथा का श्री गणेश हुआ।

कन्फूसियस ने इसी आधार पर लू राज्य का इतिहास संकलित व सम्पादित किया जो "वसन्त-शरद-वृतान्त" नाम से जाना जाता है। यह कन्फूसियसवाद के प्रामाणिक पाँच शास्त्रीय-साहित्यिक ग्रंथों में सम्मिलित किया गया है। इसी समय एक अन्य ग्रंथ भी लिखा गया था जिसे "बांस-वृत्तान्त" कहा जाता है। इसके रचयिता के बारे में इतिहासकारों में मतभेद है। कुछ इतिहासकार इसे भी कन्फूसियस से सम्बन्धित मानते हैं। पास-वृतान्त" में 781 ई० पू० से 722 ई०पू० के चीन के विभिन्न राज्यों की प्रमुख उपलब्धियों का संकलन है। इन दोनों ग्रंथों में कन्फूसियस द्वारा प्रतिपादित नैतिक सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में शब्दों के जटिल प्रयोग द्वारा घटनाओं की प्रशंसा व निन्दा को इंगित करते हुए व्याख्या की गयी है। आधुनिक इतिहास शास्त्र की दृष्टि से ये ग्रंथ संक्षिप्त, नीरस व अनियोजित हैं। यद्यपि इनमें घटनाओं की निश्चित तिथि देने का पूरा प्रयास किया गया है परन्तु इसमें उन घटनाओं को एक सूत्र में पिरोकर एक सुनियोजित विवरण देने का अभाव है। कन्फूसियस के परवर्ती इतिहासकारों ने विवरणात्मक इतिहास लिखने की दिशा में धीरे-धीरे कदम बढ़ाया लेकिन इनका उद्देश्य और दृष्टिकोण मुख्यत: कन्फूसियस द्वारा प्रतिपादित नैतिक सिद्धान्तों के आधार पर इतिहास-व्याख्या करना ही रहा। प्राचीन नैतिक सिद्धान्तों की सुरक्षा व निरन्तरता के लिए ही इतिहास-ग्रंथों में राजा और उसके राज्यकाल की घटनाएं विवेचन की मुख्य विषय बनी।

5.4 विवरणात्मक इतिहास-लेखन का विकास

कन्फूसियस द्वारा इतिहास-अध्ययन व लेखन की अनिवार्यता और महत्ता स्थापित करने के बाद इतिहास लेखन को राजकीय प्रश्रय मिला तथा बुद्धिजीवी वर्ग इतिहास-लेखन के लिए उत्साहित हुआ। इसी के साथ ही चीन में विवरणात्मक इतिहास-लेखन-परम्परा का प्रारम्भ हुआ। इसमें समानान्तर रूप से तीन स्वतन्त्र शैलियों का विकास हुआ। इस काल में वसन्त-शरद्-वृतान्त' की तुलना में उस काल के इतिहास को थोड़ा और आगे बढ़ाकर 468 ई०पू० तक ले जाया गया तथा तत्कालीन कई अन्य घटनाओं का भी वर्णन किया गया है।

विवरणात्मक-इतिहास-लेखन-परम्परा की प्रथम शैली का विकास "त्सो टीका" से हुआ। "त्सो टीका" में चीन के 'वसन्त-शरद्काल' के इतिहास को विस्तृत व सुनियोजित ढंग से सम्पादित

करने का प्रयास है। इसमें तत्कालीन इतिहास की न केवल नैतिक-सिद्धान्तों के आधार पर व्याख्या की गयी बल्कि उसमें विस्तृत विवरण को समाविष्ट करने पर भी समुचित ध्यान दिया गया। परन्तु इन विवरणों की ऐतिहासिक सत्यता पर विद्वानों को सन्देह है। अधिकतर विद्वानों का मत है कि इसमें उल्लिखित विवरण काल्पनिक या अर्द्धकाल्पनिक कथानकों पर आधारित है। उदाहरण स्वरूप इसमें जहाँ राजा या राज्य के प्रमुख व्यक्तियों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण घटनाएँ वसन्त-शरद-काल के राज्यों के सजीव, सूचनात्मक और वास्तविक ऐतिहासिक आखयानों पर आधारित हैं वहीं इन घटनाओं के विवरण में कल्पना का सहारा लिया गया है। इस प्रकार इतिहास को सजीव और नाटकीय (मनोरंजक) ढंग से प्रस्तुत करने की शैली विकसित हुई। "त्सो टीका" ने चीन के साहित्य में गद्य रचना को भी दिशा दी इसीलिए इसे चीन के गद्य साहित्य-संग्रह का सर्वप्रथम प्रमुख ग्रंथ माना जाता है।

"त्सो टीका" के साथ ही चीन में इतिहास-लेखन की एक दूसरी शैली "कुवो यू "(राष्ट्रीय गजट) की लेखन-परम्पराका प्रादुर्भाव हुआ। इस शैली के उदाहरण राज्य के घोषणा-पत्रों, अधिसूचनाओं, शासकीय निणयों, मन्त्रियों-सामन्तों के आधिकारिक वक्तव्यों के संकलन व सम्पादन में मिलते हैं। इसमें नाटकीय विवरणों का अभाव है तथा त्सो टीका की तुलना में भाषा भी क्लिष्ट व नीरस है। लेकिन इसमें राजकीय दस्तावेजों का विस्तृत उल्लेख है।

इतिहास-लेखन की तीसरी-शैली के उदाहरण "चान कुवो त्स" (युद्ध-रत राज्यों की नीति) नामक ग्रंथ में मिलते हैं। जहाँ ऐतिहासिक व अर्द्ध ऐतिहासिक स्रोतों के आधार पर तत्कालीन राजनीति व समाज का जीवन्त चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रंथ की मुख्य विशेषता है इसका मानवतावादी दृष्टिकोण। आंशिक रूप से कल्पित होने के बावजूद इसकी कथावस्तु के नायक और उससे संबन्धित घटनाओं अ विवरण अलौकिक या दैविक नहीं है। घटनाओं की प्रशंसनीयता व निन्दनीयता की विवेचना भी कन्फूसियस द्वारा प्रतिपादित नैतिक सिद्धान्तों के आधार पर मानवीय दृष्टिकोण से की गयी है। लोकप्रिय तथा जीवन्त जन-इतिहास-लेखन-परम्परा के विकास में इस ग्रंथ का महत्वपूर्ण योगदान रहा।

इतिहास-लेखन की इन तीनों शैलियों ने इतिहास को विवरण प्रधान बनाया यद्यपि इनमें घटनाओं के विवेचन में नैतिकतावादी दृष्टिकोण प्रमुख रहा। अपने आप में ये तीनों ग्रंथ पूर्ण रूप से शुद्ध इतिहास नहीं कहे जा सकते हैं परन्तु शुद्ध इतिहास लेखन की गद्य शैली के विकास में इनके योगदान व महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। चीनी-साहित्य में गद्य-परम्परा की शैली भी इनसे प्रभावित हुई। चीनी लोकसाहित्य के बहुचर्चित ऐतिहासिक उपन्यासों तीन राज्यों का रोमांस (सान् कूओ ची इ) शुई हू च्वान (कच्छ-तटीय-वृतान्त) आदि के मूल स्रोत ये विवरणात्मक इतिहास ग्रंथ ही थे।

5.5 वृहद्-इतिहास-लेखन-परम्परा का प्रादुर्भाव व विकास

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है कि चीन में इतिहास-लेखन-परम्परा का प्रारम्भ चौउ काल तथा उसके बाद के लिखित वर्ष वृत्तान्तों व विवरणात्मक इतिहास ग्रंथों के सृजन से हुआ। परन्तु आधुनिक दृष्टिकोण से चीन का सर्वप्रथम पूर्ण इतिहास ग्रंथ शीर् ची (इतिहास-वृत्त) है जिसकी रचना स्स मा छियेन ने हान् राजवंश काल में की।

हान् राजवंश से पूर्व चीन में सामन्तवादी छोटे-छोटे राज्यों का एकीकरण करके छिन् राजवंश के सम्राट छिन शी हाड़ ने एक वृहद् चीन राष्ट्र की नींव रखी। वह एक निरंकुश शक्तिशाली शासक था। उसने कन्फूसियस के नैतिकतावादी तथा तार्किक व बौद्धिक सिद्धान्तों के स्थान पर अपने साम्राज्य में विधिवादी (न्यायवादी) विचारों को प्राथमिकता दी। कन्फूसियस विरोधी अपनी विचारधारा के फलस्वरूप इसने न केवल कन्फूसियसवाद के प्रतिपादन पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाया वरन् कन्फूसियसवाद के सैद्धान्तिक ग्रंथों और सामन्तकाल के ऐतिहासिक ग्रंथों को सुनियोजित रूप से नष्ट करवा दिया। इससे इतिहास की पूर्व महत्ता कम हुई और इतिहास-लेखन भी प्रभावित हुआ परन्तु छिन् राजवंश का शासनकाल बहुत थोड़े समय का रहा। छिन् राजवंश के पश्चात् चीन में हान् राजवंश की स्थापना हुई। हान् शासकों ने कन्फूसियसवाद की आधिकारिक रूप से पुर्नस्थापना की और इसे राज धर्म घोषित किया। हान् राज्यकाल में चीन ने राजनीतिशास्त्र व प्रणाली, शिक्षा, संस्कृति, साहित्य आदि के क्षेत्रों में सर्वांगीण विकास किया। इन सब पर कन्फूसियसवाद का पूर्ण प्रभाव रहा। इतिहास में जिसे चीनी संस्कृति कहा जाता है उसको विकसित करने का पूर्ण श्रेय हान् शासकों को दिया जा सकता है। इसी कारण हान् काल को विद्वान् चीन के इतिहास का स्वर्ण काल कहते हैं। हान् राज्यकाल में कन्फूसियस की पुनर्स्थापना के साथ ही यह स्वाभाविक रूप से इतिहास-शिक्षा का मुख्य विषय हो गया। साथ ही साथ इतिहास-लेखन को पुन: प्राथमिकता मिली। इतिहास-लेखन व अध्ययन को सुचारू रूप से नियोजित करने के लिए राजकीय-अभिलेखागारों की स्थापना की गयी तथा राज्य-इतिहासकारों के रूप में विद्वानों की नियुक्ति की गयी। इन्हीं राज-इतिहासकारों में एक पिता-पुत्र स्स मा थान व स्स मा छियेन् की जोड़ी भी थी। स्स मा थान ने अपने जीवन काल में चीन के प्रथम वृहद् इतिहास ग्रंन्थ "शीरची" की रचना प्रारम्भ की। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र स्स मा छियेन् ने इस ग्रन्थ को पूर्ण कर उसको सम्पादित किया। इसीलिए 'शीरची' के रचयिता के रूप में स्स मा छियेन् ही विख्यात हुआ।

इस प्रकार स्स मा छियेन् को हम आधुनिक इतिहास-शास्त्र के परिप्रेक्ष्य में चीन का प्रथम इतिहासकार कह सकते हैं। इसके द्वारा लिखित व सम्पादित ग्रंथ शीर् ची' आगे के इतिहासकारों के लिए एक प्रमुख उदाहरण बना तथा इसी के आधार पर बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ (1911 ई॰ के पूर्व॰) तक चीन में चड़ शीर (आधिकारिक इतिहास) की रचना होती रही। 'शीर् ची' ग्रंथ को पाँच भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम विभाग "पन शीर" (मूल इतिहास या वर्ष वृतान्त) कहा जाता है। इसमें राजाओं के कार्यकाल व उनसे सम्बन्धित मुख्य घटनाओं का क्रमबद्ध विवरण दिया गया है। दूसरा विभाग 'प्याओ' (तालिका) का है। इसमें हान् राजवंश के पूर्व के विभिन्न छोटे-छोटे राज्यों वंश तालिका और हान् काल में नियुक्त सामन्तों का क्रमबद्ध परिचय दिया गया है। शीर् ची के तृतीय विभाग विनिबन्ध में धार्मिक अनुष्ठानों, संगीत, वर्ष, पंचांग, नदी, नहरों आदि पृथक विषयों पर लेख (विवरण) लिया गया है। इस तरह के लेखों की परम्परा आगे चलकर और अधिक विकसित हुई तथा चीनी इतिहास ग्रंथों में एक अनिवार्य वर्ण्य-विषय बनी। "शीर च्या" (इतिहास प्रसिद्ध परिवार) नामक चतुर्थ विभाग में पूर्व हान काल के समाज के प्रसिद्ध परिवारों व वर्गों का वंशानुगत उल्लेख किया गया है। पाँचवा व अन्तिम विभाग 'जीवन वृत्त' का है। यह विभाग सबसे बड़ा है। इसमें प्रमुख व्यक्तियों की जीवन कथाएं वर्णित हैं। इसके

अतिरिक्त ऐसे सभी वृत्तान्त जिनका उल्लेख किसी और विभाग में नहीं हुआ है उनका यहाँ वर्णन मिलता है। साथ ही साथ इसमें विदेशी राष्ट्रों और उनसे सम्बन्धित घटनाओं पर भी लेख हैं।

स्स मा छियेन् कृत वृरहद् इतिहास "शीर ची" की सर्वप्रमुख विशेषता है कि यह इतिहास के यथार्थवादी दृष्टिकोण से लिखा गया है। इसमें घटनाओं के विवरण ऐतिहासिक स्त्रोतों पर आधारित हैं। घटनाओं के काल्पनिक वृत्तान्तों को यथा संभव हटाकर संक्षिप्त व क्रमबद्ध ढंग से उल्लिखित किया गया है। इन घटनाओं पर पृथक रूप से इतिहासकार की टिप्पणियां भी दी गयी हैं। यद्यपि ये टिप्पणियां कन्फूसियस के नैतिकतावादी सिद्धान्त पर आधारित हैं फिर भी इतिहासकार द्वारा घटनाओं की स्वतन्त्र रूप से व्याख्या ने स्वतन्त्र व्याख्या की परम्परा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

5.5.1 पान् कू (३२ - १२ ई०पू०)

स्स मा छियेन् के बाद चीन में प्रामाणिक इतिहास-ग्रंथ-लेखन के विकास में इतिहासकार पान कू हान् राजवंश के इतिहास "हान् शू" का रचयिता था। स्स मा छियेन् की तरह ही पान कू ने अपने इतिहासकार पिता पान् प्याओ द्वारा प्रारम्भ किए गये हान वंश के इतिहास लेखन को पूर्ण करके सम्पादित किया। पान् कु ने इस इतिहास को पूर्ण करने का कार्य व्यक्तिगत रूप से शुरू किया था। इसके लिए उसे राजद्रोह के आरोप में बन्दी बनना पड़ा लेकिन बाद में उसे न केवल मुक्त कर दिया गया अपितु उसको आधिकारिक रूप से इस इतिहास-लेखन के कार्य को पूर्ण करने की स्वीकृति भी दी गयी। इसी से राजवंश के आधिकारिक इतिहास लेखन की परम्परा का जन्म हुआ। इसके पहले राजकीय अभिलेखागारों का प्रमुख कार्य अभिलेख-संरक्षण ही था अब वहाँ इतिहास-लेखन का भी कार्य प्रारम्भ हुआ। द्वितीय शताब्दी में एक राजकीय पुस्तक तुड़ क्वान् की स्थापना की गयी तथा उसमें इतिहासकारों की नियुक्ति की गयी। यह इतिहास-लेखन के विकास में एक महत्वपूर्ण कदम था। इन राज इतिहासकारों का मुख्य कार्य था राजवंश की उपलब्धियों को विवरण के साथ लिखना।

पान् कु का इतिहास ग्रंथ "हान् शू" स्स मा छियेन् द्वारा लिखित इतिहास ग्रंथ शीरची' की शैली पर ही लिखा गया था। लेकिन पान कू ने वृहद् इतिहास लिखने के बजाय एक राजवंश के इतिहास लेखन पर अपना ध्यान केन्द्रित रखा। उसने शीरची में वर्णित प्रारम्भिक हान् राजवंश के इतिहास की सामग्री लेकर इस राजवंश के इतिहास को वाड़ माड़ द्वारा सत्ता हथियाने (अधिकृत करने) के समय तक आगे बढ़ाया। इस प्रकार उसने एक राजवंश के उत्थान व पतन का इतिहास लिखकर एक नयी परम्परा की नींव रखी। शीरची में जहाँ ऐतिहासिक निरन्तरता को प्रतिपादित किया गया है वहीं 'हान शू' में चक्रीय इतिहास शैली को प्राथमिकता दी गयी है।

पान् कु ने अपने इतिहास ग्रंथ हान शू में शीरची की तुलना में जो अन्य परिवर्तन किया है वह तकनीकी है। जैसे उसने सामन्त परिवारों के इतिहास के विभाग को हटा दिया है क्योंकि उस समय तक चीन में साम्राज्यवादी राज्य की स्थापना हो जाने के बाद सामन्तों की प्रासंगिकता समाप्त हो गयी थी। विनिबंधों की संख्या शीरची की तुलना में बढ़ा दी गयी है तथा

उसके लेख भी विस्तृत लिख दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त इसके लेखन शैली में औपचारिक और साहित्यिक अभिव्यक्तियों पर अपेक्षाकृत अधिक ध्यान दिया गया है।

पान् कु के इस इतिहास ग्रंथ तथा तुड़ क्वान पुस्तकालय की स्थापना ने हान् काल में इतिहास के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अनेक इतिहासकारों ने व्यक्तिगत, अर्द्धव्यक्तिगत, आधिकारिक रूप से भी इस काल का इतिहास लिखा है। तुड़ क्वान पुस्तकालय के इतिहासकारों ने उत्तर-हानवंश (होउ हान) का एक आधिकारिक इतिहास ग्रंथ होउ हान् शू की रचना की। परन्तु इतिहास लेखन की दृष्टि से यह ग्रन्थ बहुत संतोषजनक नहीं था। पाँचवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में फान् ये द्वारा लिखित 'उतर-हान् राजवंश का इतिहास इस काल का आधिकारिक-प्रामाणिक ग्रंथ हुआ। आधिकारिक इतिहास लेखन के साथ-साथ व्यक्तिगत रूप से लिखित इतिहास ग्रंथों में आलोचनात्मक शैली का विकास भी इसी काल में प्रारम्भ हुआ। इतिहास-लेखन की यह आलौचनात्मक शैली स्वतन्त्र रूप से आधिकारिक इतिहास लेखन के समानान्तर विकसित हुई। इस शैली की प्रमुख विशेषताओं तथा उसके विकास की हम पृथक रूप से आगे चर्चा करेंगे।

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है कि हान् काल में कन्फूसियसवाद की पुनर्स्थापना के साथ ही इतिहास-लेखन व अध्ययन दोनों विकसित हुए। तत्कालीन शिक्षा प्रणाली में इतिहास अध्ययन का एक अनिवार्य और स्वतन्त्र विषय बना। ज्ञान की चार प्रकार की पुस्तकों में इतिहास को क्लासिकी के बाद प्राथमिकता की दृष्टि से दूसरे स्थान पर रखा गया। दर्शन और साहित्य को इसी क्रम में तीसरे और चौथे स्थान पर रखा गया। इतिहास का वह स्थान आधुनिक काल तक विद्यमान रहा।

5.6 आधिकारिक इतिहास-लेखन का विकास

(थाड् काल से छीड् काल तक)

हान् राजवंश की तरह 'थाड् राजवंश' का भी चीन के इतिहास में एक प्रमुख स्थान है। कई इतिहासकार 'थाड् काल' को ही चीनी इतिहास का स्वर्णिम युग स्वीकार करते है। इस काल में चीन एक शक्तिशाली साम्राज्य के रूप में संगठित हुआ। अन्य विदेशी साम्राज्यों के भी साथ इसका सम्पर्क हुआ तथा उनसे व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हुआ। इसके अतिरिक्त उनके साथ वैचारिक आदान-प्रदान हुआ। इस साम्राज्य के शान्ति और समृद्धि के काल में चीन के लोगों के आर्थिक सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन में चतुर्दिक उन्नति हुई।

इतिहास लेखन व अध्ययन, जो हान् काल में शिक्षा के एक प्रमुख स्रोत (विषय) के रूप में स्थापित हो चुका था, के क्षेत्र में भी इस काल में अत्यधिक प्रगति हुई। राज्य ने इस क के इतिहास को सुरक्षित रखने के लिए इतिहासकारों की एक परिषद् की नियुक्ति की जिसका प्रमुख कार्य था 'थाड् राजवंश' के पहले तथा हान् राजवंश के बाद स्थापित पाँच अल्पक राजवंश शोक इतिहास लिखना तथा 'छिन् राजवंश' पर लिखे गये 6-7 इतिहास ग्रंथों के स्थान पर एक प्रामाणिक इतिहास ग्रंथ की रचना करना। इस पुनर्लेखन के लिए इतिहासकारों की एक परिषद् के गठन के साथ ही साथ हान् काल में स्थापित राजकीय अभिलेखागार को सतयी स्वरूप प्रदान किया गया। इस आई खागार का कार्य था 'धाड़ वंश' के प्रत्येक सम्राट के शासनकाल से

सम्बन्धित महत्वपूर्ण दस्तावेजों को एकत्रित करने और उनके आधार पर प्रत्येक शासक के राज्यकाल इतिहास लिखना। इन्हें 'शी लू' (Veritable Records) के नाम से जाना जाता है। एक वंश के कई शी लू इकट्ठा करके उसके आधार पर उस वंश का प्रामाणिक इतिहास लिखा जाता था। शी लू' लिखने की प्रथा का प्रचलन 'थाड़् काल' से प्रारम्भ होकर 'छीड़ काल' तथा निरन्तर चलता रहा। इस प्रकार हान् शू' और होउ हान् शू' की परम्परा में 'धाड़ वंश' का प्रामाणिक इतिहास' थाड़् शू' 726 ई० में पूर्ण हुआ। पूर्ववर्ती राजवंशों के इतिहास ग्रंथों की तुलना में "थाड़् शू" ज्यादा वैज्ञानिक और प्रामाणिक स्त्रोतों पर आधारित है।

स्स मा क्वाड़् :- 'थाड़ काल' के पश्चात् सुड़ काल' का भी इतिहास-लेखन के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा। इस काल में "शी लू" की रचना गोपनीय इतिहास-लेखन के रूप में की जाने लगी। राज्य अभिलेखागार में अभिलेखों का संग्रह भी गोपीनीय होने लगा परन्तु राज इतिहासकारों तथा विद्वानों को इसके अध्ययन की सुविधा प्राप्त थी। परिणाम स्वरूप एक शासक या राजवंश के पतन के बाद ही उस काल के इतिहास की रचना हो पाती थी। सुड़ काल में इतिहास-लेखन शैली में भी महत्वपूर्ण विकास हुआ। इस काल तक स्वतन्त्र रूप से विकसित आलोचनात्मक इतिहास शैली का प्रभाव आधिकारिक इतिहास-लेखन शैली पर भी पड़ना प्रारम्भ हो गया था। आलोचनावादी इतिहासकारों जिनकी चर्चा आगे की जाएगी) ने राज इतिहासकारों की व्याख्यात्मक कमियों पर प्रकाश डाल कर इतिहास को एक नये परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया। सुड़' काल का महान् इतिहासकार स्स मा क्वाड़् इन्हीं नये विचारधाराओं से प्रभावित था। इसने 1095 ई० में अपना इतिहास ग्रंथ 'त्चि ची थोड़् नियेन्' (Comprehensive Mirror for Aid in Government) पूर्ण किया। इस रचना को कई विद्वान चीनी इतिहास का महानतम ग्रंथ मानते हैं। 'स्स मा क्वाड़्' ने इस ग्रंथ में वसन्त-शरद' काल के अन्त से 'सुड़' वंश की स्थापना तक के चीन के 1362 वर्षों का इतिहास लिखा।

स्स मा क्वाड़् ने राजकीय अनुमति लेने के बाद अपने ग्रंथ की रचना प्रारम्भ की थी परन्तु इसकी गणना पूर्णरूप से आधिकारिक इतिहास ग्रन्थो में नहीं की जा सकती। उसने अपने इतिहास लेखन में राजकीय इतिहासकारों का सहयोग नहीं लिया बल्कि स्वयं व्यक्तिगत रूप से शोध-सहायकों को नियुक्त कर विभिन्न ऐतिहासिक स्रोतों को एकत्रित किया। उसके इतिहास-लेखन-प्रणाली का विवरण उसके द्वारा एक अपने शोध-सहायक को लिखे गये पत्र में मिलता है। इसके अनुसार सर्वप्रथम शी लू' के आधार पर मुख्य घटनाओं ओर उनकी तिथियों का संकलन किया गया। तत् पश्चात् इन घटनाओं के विवरण शी लू' के अतिरिक्त आधिकारिक राजवंश इतिहास ग्रंथ, व्यक्तिगत रूप से लिए गये इतिहास ग्रंथ, आत्मकथा, अभिलेख आदि अन्य प्राप्य स्रोतों से एकत्रित किए गये। इस प्रकार घटनाओं के विवरण आधिकारिक और व्यक्तिगत दोनों प्रकार के ऐतिहासिक स्रोतों के आधार पर लिखे गये। जहाँ इन दोनों विवरणों में भिन्नता थी वहाँ स्वविवेक के आधार पर वास्तविक चित्रण करने का प्रयास किया गया। घटनाओं की प्रमुखता और गौड़ता भी इतिहासकार ने स्वयं निर्धारित की है। इसके अतिरिक्त पूर्ववर्ती इतिहास ग्रंथों की तुलना में इसमें सबसे उल्लेखनीय परिवर्तन था एक नये अनुभाग खाओ ची' (अभिलेख परीक्षण-Examination of Differences) की रचना। यहाँ इतिहासकार ने अपने विवेचन के

समर्थन में तर्क संगत युक्तियां प्रस्तुत की हैं। ये युक्तियां अब वृत्तान्त में अन्तर्निहित न होकर पृथक रूप से व्यक्त की गयीं। इस प्रकार स्स मा क्याड़ का ग्रन्थ कई नवीनताओं के कारण आधुनिक इतिहास-लेखन-शैली के समकक्ष रखा जा सकता है। फिर भी यह ग्रंथ आधिकारिक इतिहास का स्थान नहीं प्राप्त कर सका। इसके द्वारा प्रारम्भ की गयी कन्फूसियसवाद के सीमित परिक्षेत्र से हट कर इतिहास-लेखन की नयी प्रणाली को बाद के राजकीय इतिहासकारों ने उभरने नहीं दिया।

स्स मा क्वाड् के आधुनिक इतिहास-लेखन-शक के सीमित प्रभाव का मुख्य कारण था उत्तर सुड़ काल में नव कन्फूसियसवादवाद' का विकास। इस वाद 'के प्रवर्तक थे चू शी'। चू शी ने कन्फूसियसवाद के नैतिक मूल्याकंन 'के सिद्धान्तों को और आगे बढ़ा कर "नव कन्फूसियसवादवाद" के रूप में प्रस्तुत किया। इस वाद की, परम्परा-निष्ठा पर बल और दृढ़ता ने तत्कालीन समाज और संस्कृति को एक महत्वपूर्ण ढंग से पृष्ठगामी (भूतदर्शी) बना दिया। इसका प्रभाव इतिहास लेखन पर भी पड़ा। जहाँ स्स मा क्याड् ने यथार्थवादी इतिहास लेखन की परम्परा को एक निश्चित रूप देकर आगे बढ़ाया था वहीं नव कन्फूसियसवाद के नीतिशास्त्रियों (नैतिक वादियों) ने पुन: इसे कन्फूसियस द्वारा निर्धारित साँचे में तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करना प्रारम्भ किया। चू शी ने नव कन्फूसियसवाद के सिद्धान्तों के आधार पर घटनाक्रम और भाषा की शैली में परिवर्तन करके स्स मा क्वाड् के ग्रंथ का संक्षिप्तीकरण किया। स्स मा क्वाड् ने एक यथार्थवादी इतिहासकार के रूप में राज्य के असन्तुष्ट वर्गों, अप्रशंसनीय घटनाओं, तथाकथित बर्बर राजाओं के राज्यकाल को भी अपने इतिहास में स्थान दिया था परन्तु चू शी ने संक्षिप्तीकरण करते समय इस तरह के सभी वृत्तान्तों को हटा दिया यहाँ तक कि बर्बर राजाओं के काल को अन्य राजाओं के काल में मिलाकर उनकी ऐतिहासिकता पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया। इस प्रकार 'नव कन्फूसियसवाद' ने मौलिक और कल्पनाशक्ति सम्पन्न विचारधाराओं के विकास को अवरुद्ध कर दिया। जिसके परिणाम स्वरूप मिड़ काल तक ज्ञान के क्षेत्र में कोई रचनात्मक प्रयोग नहीं हो सका।

छीड् काल में सुड़ और मिड् काल की रूढ़िवादिता पर प्रहार प्रारम्भ हुआ। इस काल में पुन: ज्ञानवर्धन के लिए स्पष्ट व प्रामाणिक आधारों को प्राथमिकता दी गयी। सुड़कालीन दार्शनिक चू शी की रूढ़ि वादिता तथा मिड़ क के प्रसिद्ध विचारक वाड़ याड़ मिड़ के "अन्तर्ज्ञानात्मक आदर्शवाद के विरोध में छिड़ कालीन प्रमुख दार्शनिक-विद्वान् कू यान् बू (1613-1682 ई०) ने 'प्रमाण अन्वेषण' विचार धारा को पुनर्जीवित किया। इसका तत्कालीन चीन के दर्शन और इतिहास लेखन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। कु यान बू ने इतिहास में आलोचनात्मक मूल्यांकन पर बल दिया। उसके द्वारा रचित इतिहास ग्रंथ 'ऋ चिर लू' में न केवल पूर्ववर्ती काल की सभी प्रशंसनीय व निन्दनीय घटनाओं का क्रमबद्ध वर्णन है बल्कि उन पर स्पष्ट टिप्पणियां भी हैं। उसने इतिहास को प्राचीनकाल की घटनाओं को जानने और उसके अनुसरण करने के अतिरिक्त तत्कालीन समाज की रचना और स्वरूप के विकास के लिए अध्ययन क माध्यम भी माना। इसीलिए हमें कू यान् बू के इतिहास ग्रन्थ में विभिन्न ऐतिहासिक कालों में उत्तरी व दक्षिणी चीन के किसानों की समस्या, राजकीय परीक्षा-प्रणाली की अपर्याप्तता आदि पूर्वोपेक्षित विषयों की समीक्षा मिलती है। ये सभी विषय पूववर्ती इतिहासकारों

के लिए प्रतिबन्धित थे। इस प्रकार मिड् काल में आलोचनात्मक इतिहास शैली, जो सुड़ और मिड् काल में लुप्त प्राय: हो गयी थी, का पुनर्प्रचलन हुआ।

यह कहा जा सकता है कि इन प्रयासों के बावजूद भी हान् और थाड् काल में निर्धारित इतिहास-लेखन-शैली के स्वरूप में छीड् काल के अन्त तक कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। स्स मा क्वाड् या कू यान् वू ने आलोचनात्मक शैली का विकास करके इतिहास-लेखन-शैली में जो परिवर्तन का प्रयास किया था वह भी कन्फूसियसवादी संस्कृति और दर्शन के अन्तर्गत ही था। इस प्रकार चीनी इतिहास-लेखन-परम्परा में, पाश्चात्य सभ्यता और मार्क्सवाद का प्रभाव पड़ने तक, एक निरन्तरता ही दिखती है।

5.7 विश्लेषणात्मक व आलोचनात्मक इतिहास-लेखन

जैसे कि पहले चर्चा की जा चुकी है कि हान काल में इतिहास लेखन- परम्परा के सर्वांगीण विकास के साथ ही साथ आधिकारिक इतिहास-लेखन शैली के विरोध में आलोचनात्मक इतिहास लेखन-शैली का स्वतन्त्र व समानान्तर रूप से विकास हुआ था जिसका प्रतिपादन भी राजकीय इतिहासकारों के एक वर्ग ने किया। इस वर्ग ने विवेचनात्मक इतिहास लेखन के माधयम से तत्कालीन राजनैतिक व सामाजिक व्यवस्था के प्रति अपना असन्तोष प्रकट किया। हान् कालीन विद्वान विचारक और आलोचक ल्यू श्ये ने अपने ग्रंथ 'वन् श्येन् थ्याओ लिड़" (साहित्यिक अनुशीलन) में इतिहास के समालोचनात्मक शैली की आवश्यकता को सर्वप्रथम सुनियोजित रूप से प्रतिपादित किया। यह ग्रंथ चीन में साहित्यिक आलोचना का मुख्य उदाहरण माना जाता है। इसके एक भाग में इतिहास लेखन के सिद्धान्तों की भी व्याख्या है। इसमें ल्यू श्ये ने पूर्ववर्ती सभी इतिहासकारों की आलोचना करते हुए संतुलित, विश्वसनीय और निष्पक्ष ढंग से इतिहास लेखन की समकालीन कठिनाइयों की ओर संकेत किया है। उसने समाज में इतिहासकार को नीति-संरक्षक (Moralist) के रूप में कार्य करने तथा सत्य को बिना किसी भय के पक्षपात रहित ढंग से प्रस्तुत करने पर बल दिया।

परम्परागत इतिहास लेखन शैली की सर्वप्रथम आलोचना ल्यू चिर ची ने (661-721 ई०) अपने ग्रंथ शिर थोड़ (इतिहास का सामान्यीकरण) में की। ल्यू एक संशयवादी और जागरूक इतिहासकार था। उसने अपने बौद्धिक जीवन का प्रारम्भ राजकीय अभिलेखागार के इतिहासकार के रूप में की। लेकिन वह शीघ्र ही वहाँ के इतिहासकारों की राजकीय संरक्षण में संयुक्त रूप से आधिकारिक इतिहास लेखन प्रणाली की प्रचलित प्रथा से असन्तुष्ट हो गया। उसके अनुसार इस प्रणाली में व्यक्ति का इतिहास-लेखन में कोई महत्व नहीं रह जाता है। साथ ही साथ विभागीय निरीक्षकों द्वारा तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करने से यर्थाथवादी दृष्टिकोण समाप्त हो जाता है। फलस्वरूप इतिहास समकालीन राजनैतिक घटनाओं का प्रतिबिम्ब मात्र रह जाता है उसमें विवरणात्मक या समालोचक तत्वों का अभाव हो जाता है। शासकीय संरक्षण में लिखित इतिहास के विरोध में इसने व्यक्तिगत इतिहास लेखन परम्परा के विकास पर बल दिया। उसके अनुसार इसी परम्परा से यथार्थवादी, विश्लेषणात्मक व समालोचनात्मक इतिहास-लेखन की पद्धति विकसित होगी।

ल्यू के विचारों को थाड़ काल के अन्तिम दिनों में प्रमुखता मिली। इस समय प्रसिद्ध आन् लू शान् विद्रोह से राजशक्ति क्षीण हो गयी थी। पूरे साम्राज्य में अराजकता फैल गयी थी। तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों में इतिहासकार आलोचनात्मक शैली की ओर आकृष्ट हुए। राजनीतिक अराजकता के इस युग में तू यू (735-812 ई०) ने एक वृहद् इतिहासकोश की रचना की। इस कोश का स्वरूप आधिकारिक इतिहास ग्रंथों से भिन्न था। इस ग्रंथ की विशेषता यह थी कि इसमें इतिहासकार की प्रस्तावना और निष्कर्ष के साथ ऐतिहासिक विवरणों को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया जिससे तत्कालीन विषम राजनैतिक परिस्थितियों का अध्ययन संभव हो सके। इसके साथ ही इसमें कन्फूसियसवाद के स्थान पर न्यायवाद के दार्शनिक सिद्धान्तों को प्रमुखता दी गयी थी। फलस्वरूप राजनीतिक संस्थाओं के उत्पत्ति और विकास की ऐतिहासिक व्याख्या न्यायवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत की गयी। तत्कालीन राजनैतिक संस्थाओं के हास का कारण नैतिकता के सिद्धान्तों के पतन में नहीं अपितु राज्य द्वारा राजकीय विधानों के क्रियान्वयन की असमर्थता में देखा गया।

तू यू द्वारा प्रारम्भ की गयी आलोचनात्मक इतिहास लेखन शैली का समकालीन व परवर्ती इतिहासकारों ने अनुकरण किया। इतिहासकार सू मियेन् द्वारा लिखित "हुइ याओ" (Collected Acts) इसी परम्परा में रचित चीन का प्रशासनिक इतिहास ग्रंथ है। 13वीं शताब्दी में मंगोलों द्वारा चीन पर आधिपत्य स्थापित करने के समय इतिहासकार "मा थ्वान् लिन्" ने तू यू के कोश से भी वृहद् एक इतिहास कोश "वन् श्येन थुड़ खाओ" (ऐतिहासिक अभिलेखों का वृहद् आलोचनात्मक परीक्षण) की रचना की। इसमें क्रमबद्ध वंशानुगत इतिहास लेखन प्रणाली से हटकर चीनी समाज के ऐतिहासिक विकास के अध्ययन का प्रयास किया गया। इस कोश में दी गयी प्रस्तावना और निष्कर्ष सम्बन्धी टिप्पणियां बहुत कुछ समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों पर लिखित आधुनिक इतिहास ग्रंथों के समान हैं।

जैसा कि पहले बतलाया गया है कि सुड़ काल में इतिहास लेखन में तीव्र प्रगति हुई। एक ओर आधिकारिक इतिहास लेखन विकसित हुआ तो दूसरी ओर व्यक्तिगत, आधिकारिक व आलोचनात्मक इतिहास ग्रंथ लिखे गये। इन दोनों शैलियों को समन्वित करके सुड्कालीन प्रमुख इतिहासकार स्स मा क्वाड् ने पूर्वोल्लिखित प्रसिद्ध ग्रंथ "त्चि ची थोड् नियेन" (Comprehensive Mirror for Aid in Governing) की रचना की थी। इसके साथ ही इसने एक अन्य ग्रंथ "खाओ ई" की भी रचना की थी जिसमें विभिन्न ऐतिहासिक स्त्रोत के चयन में विवादों और समस्याओं का वर्णन करते हुए इतिहास के लिए कौन से स्त्रोत और क्यों महत्वपूर्ण होते हैं, की व्याख्या की गयी है। कुछ इसी प्रकार का एक अन्य ग्रंथ "छिएन् यान् इ लाय् णी नियेन् याओ लू" उत्तर सुड़ काल में इतिहासकार ली विन् छवान् द्वारा लिखा गया। ली ने अपने दक्षिणी सुड़ के इतिहास में न केवल परस्पर विरोधी विभिन्न ऐतिहासिक स्रोतों का उल्लेख किया है अपितु तथ्यों की ऐतिहासिक सत्यता पर पूर्ववर्ती इतिहासकारों का मत देते हुए अपना दृष्टिकोण भी सुस्पष्ट ढंग से प्रस्तुत किया है।

17वीं और 18वीं शताब्दी में छीड़ काल के समय नव कन्फूसियसवाद के पतन के बाद संस्कृति और ज्ञान के पुनरुत्थान के साथ-साथ आलोचनात्मक विलेषणात्मक इतिहास की चीनी परम्परा का भी पुनर्विकास हुआ। परन्तु यह चीनी परम्परा 19वीं शताब्दी आते आते अपने

विकास के अन्तिम चरण में पहुँच गयी जब पाश्चात्य विचारधाराओं के प्रवेश व अभूतपूर्व विस्तार के प्रभाव से सम्पूर्ण चीनी इतिहास लेखन शैली में मौलिक परिवर्तन होना प्रारम्भ हो गया। छीड़ काल का आलोचनात्मक या विशलेषणात्मक इतिहास लेखन विस्तृत पाठालोचन पर आधारित था। इस काल में इतिहास के प्रामाणिक मानक ग्रंथों पर अनेक टीकाएं लिखी गयी। इन टीकाकारों में वाड़् मिड़ शाड़ तथा छिएन् ता शिन् प्रमुख थे। वाड़ ने शी छी शीर शाड़ च्चे' (The Critical Study of seventeen Histories) और छिएन ने अर शी ई शीर खाओ ई' (Examination of Differences in 21 Histories) नामक ग्रंथ लिखा। इन दोनों इतिहासकारों ने स्वतन्त्र रूप से आधिकारिक और व्यक्तिगत ऐतिहासिक स्रोतों, लेखों ओर अभिलेख संग्रहों का अध्ययन करके मानक इतिहास ग्रंथों में कई सुधार करके अपने विवरण व टिप्पणियां लिखी। चीनी इतिहास के कई प्रमुख व्यक्तित्वों का एक नये दृष्टिकोण से अध्ययन कर उनके कार्य-कलापों को सुस्पष्ट ढंग से प्रस्तुत किया गया। एक ओर जहां इतिहासकारों ने राजवंशों के उत्थान व पतन के विस्तृत वर्णन व टीका पर ध्यान दिया वहीं दूसरी ओर चीन की राजनीति संस्थाओं, सामाजिक व्यवस्था और आर्थिक ढाँचे की उत्पत्ति, विकास और समस्याओं का भी अध्ययन प्रारम्भ हुआ। परम्परागत इतिहास-क्षेत्र को विस्तृत करके उसमें ऐतिहासिक भूगोल आदि अन्य प्रासंगिक विषयों का समावेश किया गया।

इतिहास को इस नये दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने में प्रमुख योगदान चाओ ई (1727-1814 ई०) और चाड़ श्वे छड़ (1783-1801 ई०) का था। चाओ ई कृत "नियेन् अर शी अर छा चिर" (Notes on Twenty-two histories) इस छीड़ कालीन नयी विश्लेषणात्मक इतिहास शैली का सुन्दर उदाहरण है। लेकिन चाड़ श्वे छड़ की रचनाएं आधुनिक इतिहास शैली के अधिक निकट हैं। चाड़ में इतिहास अध्ययन की एक विशेष व वित्नक्षण ललक थी। वह इतिहास को उद्देय परक समझता था। उसके अनुसार बिना इतिहास-अर्थ-बोध के इतिहास-लेखन व्यर्थ था। इसलिए अपने जीवनकाल का अधिकांश समय उसने इतिहास दर्शन को संयोजित करने में लगाया। इससे एक सुनियोजित व परिपक्व ढंग से सुड़ वंश का इतिहास लिखने की उसकी महत्वाकांक्षा अधूरी रह गयी। लेकिन उसके द्वारा लिखित अनेक निबन्धों ने चीन में इतिहास लेखन का एक नया दर्शन दिया। यद्यपि चाड़ की रचनाएँ उसके जीवनकाल में प्रसिद्ध नहीं हुई परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् अनेक इतिहासकारों ने अपने ग्रंथों में उसके इतिहास दर्शन का अनुसरण किया। इसीलिए प्रोफेसर डेमीविल ने याड़ की तुलना प्रसिद्ध इतालियन इतिहासकार व दार्शनिक गियामबतीसा विको से की है जो अपनी मृत्यु के बाद ही प्रसिद्ध हुआ।

चीन की आलोचनात्मक या विश्लेषणात्मक इतिहास लेखन-परम्परा छीड़ राजवंश की विघटन प्रक्रिया प्रारम्भ होने के साथ ही लुप्त होने लगी। 19वीं शताब्दी के अन्त से चीन में पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण परम्परागत रूढ़िवादी शिक्षा प्रणाली के आधुनिकीकरण की ओर प्रसास होने लगा। पश्चिमी साम्राज्यवादी शक्तियों के विस्तार और बढ़ते हुए प्रभाव से चीन में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था का विघटन प्रारम्भ हुआ। इन नयी समस्याओं से निपटने में चीन की विषद असफलताओं का कारण चीन को रूढ़िमुक्त कन्फूसियसवादी सांस्कृतिक और दार्शनिक परम्परा का नवीन ज्ञान-विज्ञान के प्रति अरूचि को ही चीन की तत्कालीन निर्बल राजनैतिक व सामरिक स्थित तथा मृतप्राय सामाजिक और आर्थिक ढाँचे का मूल कारण माना।

चीन की प्राचीन सभ्यता की श्रेष्ठता ओर औचित्य को नकारते हुए इस नये वर्ग ने रूढ़िवाद के विरूद्ध व्यापक आन्दोलन चलाया। इन सब के प्रभाव से 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ होते होते चीन में रूढ़िवादी कन्फूसियस शिक्षा प्रणाली पर आधारित प्रशासकीय- सेवा-परीक्षा-प्रणाली समाप्त कर दी गयी। पाश्चात्य विचारधाराओं की लहर फैलने लगी। रूढ़िवादी सांस्कृतिक परम्परा को सबसे बड़ा आघात 4 मई 1919 के आन्दोलन से लगा जिसने चीन में राजनैतिक सामाजिक व सांस्कृतिक क्रान्ति की नींव डाली। इन सब के साथ परम्परागत इतिहास लेखन शैली का भी स्थान पश्चिमी विकसित राष्ट्रों की नयी दार्शनिक व समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों पर आधारित आधुनिक इतिहास लेखन शैली ने लेना प्रारम्भ किया। वर्ष 1949 में चीन की राजनैतिक क्रान्ति से अन्ततः इतिहास लेखन का मार्क्सवादी भौतिकवाद पर आधारित सिद्धान्त प्रमुख रूप से स्थापित हो गया। समाज के वर्ग-संघर्ष ओर आर्थिक-आधार को इतिहास लेखन का मुख्य विषय बनाया गया।

5.8 चीनी इतिहास-लेखन-परम्परा की विशेषताएं

पाश्चात्य इतिहास-लेखन की तुलना में चीन की इतिहास-लेखन की परम्परा की मुख्य विशेषताएं क्या थी, इस प्रश्न का प्रोफेसर एतिएन बालाज़ की मुख्य विशेषताएं क्या थी, इस प्रश्न का प्रोफेसर एतिएन बालाज़ ने एक शब्द में "रूढिबद्धता" यह कह कर उत्तर दिया है। इतिहास लेखन में इस "रूढिबद्धता" के फलस्वरूप चीन के इतिहास ग्रंथों में एक ओर व्यक्ति या इतिहासकार की छाप नहीं मिलती तो दूसरी ओर इसमें संश्लेषण पर पहुंचाने वाली अमूर्त विचारधारा का अभाव है। जहाँ भी किसी प्रमुख व्यक्ति का विवरण है वहाँ उसका वर्णन उसकी सामाजिक वर्ग स्थिति के अनुसार किया गया है। उदाहरणार्थ एक राजा को कन्फूसियस द्वारा प्रतिपादित राजोचित-गुणों के साथ ही दिखलाया गया है। उसी प्रकार एक मन्त्री या कृषक का वर्णन उसके लिए निर्धारित गुणों के परिप्रेक्ष्य में ही किया गया है। इस प्रकार व्यक्ति विशेष के स्वचरित्र के स्थान पर उस व्यक्ति के सामाजिक वर्ग के अनुसार उसके कार्य-कलापों का विवेचन किया गया। दूसरी ओर चीनी-इतिहास लेखन में घटनाओं के क्रमबद्ध विवरण को प्रमुखता दी गयी। लेकिन इतिहास के एक ही प्रकार की घटनाओं की आवृत्ति पर न कोई व्याख्या, नहीं सामान्यानुमान या परिकल्पना ही मिलती है।

प्रोफेसर बालाज़ के अनुसार चीनी इतिहास लेखन की इन विशेषताओं के तीन-प्रमुख कारण थे। पहला कारण था "वहाँ का इतिहास-लेखन राजवंशों के इतिहास लिखने तक ही सीमित रहना तथा उसी सीमित दायरे में इसका विकास होना।" एक राजवंश के काल में विकसित विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक प्रवृत्तियों-का विकास उस वंश के उत्थान (अभ्युदय)-पतन तक ही देखा गया। इन प्रवृत्तियों के विकास की प्रक्रिया का ऐतिहासिक काल में अध्ययन का प्रयास नहीं किया गया, नहीं विभिन्न राजवंशों में एक ही प्रकार की प्रवृत्तियों या घटनाओं की उत्पत्ति पर स्पष्ट ऐतिहासिक दृष्टिकोण से सुनियोजित व्याख्या की गयी। इस प्रकार "इतिहास" राजनीति और समाज के विकास को एक चक्रीय स्वरूप में प्रस्तुत करता रहा। यद्यपि सुङ्काल में इतिहास के इस सीमित दायरे की ओर विद्वानों का ध्यान गया लेकिन इसके बावजूद इतिहास लेखन शैली में कोई व्यापक परिवर्तन आधुनिक काल तक नहीं हुआ। इस प्रकार इतिहास चक्रीय सिद्धान्तों पर आधारित था।

दूसरा कारण था "इतिहास के अध्ययन व लेखन का मुख्यत: राज्याश्रित होना"। अधिकांशत: इतिहासकार राजा व राज्य के वेतनभोगी कर्मचारी थे। इनका मुख्यकार्य सम्राट के कार्य-कलापों, शासकीय गतिविधियों और महत्वपूर्ण घटनाओं के दिन-प्रतिदिन के विवरण को संकलित करना था। इस तरह उनका अधिकतर समय घटनाओं को अभिलेखों के रूप में अक्षुण्ण करने में जाता था न कि उनके आधार पर इतिहास लेखन में साथ ही एक राजवंश का इतिहास प्राय: उसके पतन के बाद स्थापित नये राजवंश के इतिहासकारों द्वारा लिखा जाता था। लेकिन पूर्व राजवंश में संकलित अभिलेखों के आधार पर विवेचनात्मक इतिहास लेखन एक दुरूह कार्य था। इसका मुख्य कारण राजकीय प्रश्रय प्राप्त इतिहासकारों का मुख्य उद्देश्य अभिलेखों की परिमाणात्मकता थी न कि गुणात्मकता। इस प्रकार अभिलेखों की संख्या तो अधिक हो जाती थी लेकिन उनसे कोई निष्कर्ष निकालने या भूत से वर्तमान काल के लिए शिक्षा प्राप्त करने का कार्य जटिल था।

चीनी-इतिहास-लेखन की रूढिबद्धता का तीसरा मुख्य कारण "भाषा की सीमितता" थी। इस सीमितता ने इतिहास ग्रंथों में भाषा-प्रवाह को एक संकुचित परिधि में रखा। चीनी इतिहास-लेखन उद्धरण प्रधान रहा। इसके फलस्वरूप इतिहासकारों की मुख्य-प्रवृति पूर्ववर्ती ऐतिहासिक अभिलेखों को अपने शब्दों में संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत करने के बजाय मूलपाठ को छोटे-छोटे टुकड़ों में उद्धृत करने की थी। इनका यथासंभव प्रयत्न इन विभिन्न अभिलेखों से मुख्य विवरणों को लेकर उन्हीं शब्दों में लिखना था। इस तरह एक इतिहास-ग्रंथ प्राय: पूर्ववर्ती अभिलेखों से उद्धृत अंशों की एक श्रृंखला मात्र होता था। परिणाम स्वरूप हमें इतिहास ग्रंथों में इतिहासकार की व्यक्तिगत छाप या उसकी विचारधारा का अनुमान नहीं मिलता। साथ ही छोटे-छोटे उद्धत अंशों से न केवल मूलपाठ की नैसर्गिकता या स्वाभाविकता समाप्त हो जाती थी बल्कि इससे आगे के इतिहासकारों के लिए इन अंशों के आधार पर एक सहज भाषा में इतिहास-लेख अत्यन्त जठिल हो जाता था। इन सब कारणों ने इतिहास लेखन में सृजनात्मक और मौलिक प्रवृत्तियों के विकास को अवरूद्ध कर दिया और इतिहास-लेख की एक स्थापित शैली प्राचीन काल से आधुनिक काल तक चलती रही।

इन सब के अतिरिक्त कन्फूसियसवाद की निरन्तरता ने इतिहास-लेखन की प्रतिबद्धता को सुरक्षित रखने में अधिकतम योगदान दिया। कन्फूसियस परम्परा में इतिहास प्रलेख व अभिलेख को एक पवित्र और धार्मिक धरोहर के रूप में अक्षुण्ण रखने पर अत्यधिक ध्यान दिया गया और इनमें किसी प्रकार परिवर्तन करना नैतिकता के सिद्धान्तों का उल्लंघन माना गया। इस प्रकार कन्फूसियसवाद से अभिन्न रूप से जुड़े हुए इतिहास में परिवर्तन का एक सीमित परिधि के बाहर कोई स्थान नहीं था। इस प्रकार यह ठीक ही कहा गया है कि चीन में इतिहास वास्तव में राजकीय इतिहासकारों द्वारा राजकीय इतिहासकारों के लिए ही लिखा गया।

5.9 अभ्यासार्थ प्रश्न:

(i) चीनी इतिहास लेखन की उत्पत्ति के बारे में आप क्या जानते हैं?

(ii) कन्फूसियसवाद ने चीनी इतिहास लेखन को किस प्रकार प्रभावित किया?

(iii) चीनी इतिहासकार पानकू के इतिहास लेखन की व्याख्या कीजिए।

(iv) चीन में विश्लेषणात्मक एवं आलोचनात्मक इतिहास लेखन का प्रादुर्भाव किस प्रकार हुआ?

(v) चीनी इतिहास लेखन की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख कीजिये।

5.10 संदर्भ ग्रन्थ

W. G. Beasley and E.G. Pulleyblank ed. **Historians of China and Japan.** London. 1961

Albert Feuerwerker, ed. **History in Communist China** Cambridge, Mass 1968

Joseph R.. Levenson, "the Place of Confucius in Communist China", **China Quarterily** 12 (Oct-Dec. 1962)

Etiene Balazs, **Chinese Civilization and Bureaucracy. Yale** University Press, New Haven, 1972.

इकाई - 6

अरबी एवं इस्लामी इतिहास लेखन की परम्परायें

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 इतिहास के सम्बन्ध में मुस्लिम विचार

6.3 इस्लाम के उदय के पूर्व अरब में ऐतिहासिक चेतना

- 6.3.1 युद्ध कालीन वृतांत
- 6.3.2 वंशावलियां
- 6.3.3 शिला लेख

6.4 यहूदियों और इसाईयों की भूमिका

6.5 इस्लाम में ऐतिहासिक चेतना का विकास

6.6 मुस्लिम इतिहास लेखन की आधार मत पद्धतियाँ

- 6.6.1 खबर इतिहास
- 6.6.2 काल कमात्मक इतिहास लेखन
- 6.6.3 राजवंश सम्बन्धी इतिहास लेखन
- 6.6.4 वंशावली सम्बन्धी पद्धति
- 6.6.5 तबक्षात पद्धति

6.7 उमैय्या खलीफाओं के समय का इतिहास लेखन

6.8 अब्बासी खलीफाओं के काल में इतिहास लेखन

6.9 ईरान का सांस्कृतिक उत्थान और इतिहास लेखन

6.10 मंगोल आक्रमण और इतिहास लेखन

6.11 भारत में मुस्लिम इतिहास लेखन

6.12 अन्दलूसी और मगरिबी इतिहास लेखन

6.13 इब्नरवल्दून के बाद का इतिहास लेखन

6.14 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.15 संदर्भ ग्रन्थ

6.0 उद्देश्य:

(i) इतिहास के बारे में इस्लामिक अवधारणा से अवगत करवाना।

(ii) इस्लाम के उदय के पूर्व अरब की ऐतिहासिक चेतना की जानकारी करवाना।

(iii) इस्लामिक इतिहास लेखन की विभिन्न पद्धतियों का विश्लेषण करना।

6.1 प्रस्तावना:

इतिहास से सम्बन्धित मुस्लिम विचार क्या थे' क्या इस्लाम के उदय के पूर्व भी अरब में इतिहास लेखन की परंपरा विद्यमान थी और अगर थी तो किस रूप में थी? इस्लामी

इतिहास लेखन का क्रमिक विकास किस प्रकार हुआ? हजरत मोहम्मद का इतिहास के प्रति क्या दृष्टिकोण था और उसका इस्लामी इतिहास लेखन के विकास पर क्या प्रभाव पड़ा? मुस्लिम इतिहास लेखन की कौन-कौन सी प्रमुख पद्धतियाँ प्रचलित थी? मुस्लिम इतिहास लेखन के प्रसिद्ध इतिहासकार कौन थे और उनका मुस्लिम इतिहास लेखन में क्या प्रमुख योगदान रहा है।

उपर्युक्त कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनके आधार पर हम यहां अरबी एवं इस्लामी इतिहास लेखन की परंपरा पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

6.2 इतिहास के संबंध में मुस्लिम विचार:

अरबी एवं इस्लामी इतिहास के विकास और स्वरूप पर विस्तार से चर्चा करने के पहले यह जान लेना आवश्यक है कि इतिहास के संबंध में मुस्लिम विचार क्या थे? इतिहास के आधुनिक सिद्धांत के निर्माण में शब्द विज्ञान के विकास की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यही बात मुस्लिम इतिहास लेखन पर भी लागू होती है। दो तकनीकी शब्द की सामान्यत: अरबी भाषा में इतिहास का विचार इंगित करते हैं, वे हैं - अखबार और तारीख। अखबार जो खबर का बहुवचन है, इतिहास के लिए सामान्य रूप से अधिक प्रयुक्त होता है। खबर शब्द की उत्पत्ति किस प्रकार हुई, यह बिल्कुल स्पष्ट नहीं है। स्वयं अरबी भाषा में इसके सम्भावित मूल अर्थ का कोई संकेत नहीं मिलता है। ऐतिहासिक क्षेत्र में अरबी शब्द खबर का अभिप्राय महत्वपूर्ण घटनाओं के बारे में सूचना और स्वयं घटनाओं से हैं। कहानी और किस्से के अर्थ में अखबार इतिहास के ही सदृश है। इस शब्द ने बाद में हजरत मोहम्मद के और विशेष रूप से प्राचीन मुस्लिम शासकों के कथनों और कार्यों के बारे में सूचना का अतिरिक्त अर्थ ग्रहण कर लिया। अन्य शब्दों जैसे आसार के साथ-साथ यह शब्द वस्तुत: हदीस का पर्यायवाची हो गया।

तारीख जो कम से कम नवीं शताब्दी से लेकर आगे तक इतिहास के लिए सामान्यत: विशिष्ट तकनीकी शब्द माना जा सकता है, पूर्णत: अखबार से भिन्न शब्द है। अरबी में तारीख शब्द का अर्थ तिथि और युग दोनों होता है। इस शब्द का स्पष्ट रूप से उल्लेख इस्लाम से पूर्व अरब साहित्य में नहीं मिलता है। कुरान एवं हदीस में भी इसका उल्लेख नहीं मिलता है। तारीख शब्द का अरबी भाषा में सर्वप्रथम उल्लेख मुस्लिम युग के आरम्भ से संबंधित कहानियों के साथ मिलता है। मुस्लिम परम्परा इस विचार का समर्थन करती है कि हिजरी सम्बत खलीफा उमर के समय में प्रारम्भ हुआ था। तत् पश्चात् तारीख ने ऐतिहासिक ग्रंथ और फिर इतिहास का अर्थ ग्रहण कर लिया ठीक उसी प्रकार जैसे कि इतिहास का अर्थ इतिहास और ऐतिहासिक ग्रंथ दोनों होता है। ऐतिहासिक ग्रंथ के अर्थ के रूप में तारीख शब्द का पहली बार प्रयोग कब हुआ, यह निर्धारित करना बहुत मुश्किल है। किंतु इतना निश्चित है कि इस अर्थ में यह शब्द हिजरी सम्वत् की दूसरी शताब्दी से दृढ़ता से स्थापित हो गया। ऐसे ग्रंथों के लिए जिनमें तिथियां दी हुयी होती थी प्रयुक्त किए जाने के फलस्वरूप, यह अर्थ ग्रहण कर लिया। अत: मूल रूप से ऐसे ऐतिहासिक ग्रंथों को जिनमें तिथियाँ नहीं मिलती हैं, पूरी तरह से तारीख नहीं कहा जा सकता। किंतु फिर भी यहां इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि हमें ऐसे अनेक प्राचीन ग्रंथ मिलते हैं जिन्हें तारीख कहा जाता था परंतु जो वास्तव में जीवनियों के संग्रह थे और जिनमें तिथियाँ बहुत ही कम दी गयी थी।

सामान्य रूप से "इतिहास" शब्द का अर्थ कालक्रमानुसार लिखे गए ऐतिहासिक ग्रंथों के लिए इस शब्द के प्रयुक्त किए जाने के साथ विकसित हुआ और धीरे-धीरे तीसरी शताब्दी से आगे प्रचलित हो गया।

तारीख का शब्द विज्ञान संबंधी इतिहास जैसा कि उपरोक्त पंक्तियों में लिख जा चुका है, पूर्णत: निश्चित नहीं माना जा सकता है। किसी भी अवस्था में महत्वपूर्ण बात यह है कि इसके शब्द विज्ञान सम्बन्धी इतिहास के परिणामस्वरूप पहले से ही तारीख शब्द ने मुस्लिम पाठकों में ऐसे विचार विकसित कर दिए होंगे जो हमारे इतिहास शब्द द्वारा सुनाए गए विचारों से समता नहीं रखते हैं। "इतिहास" शब्द और अरबी शब्द जिनका हम "इतिहास" के रूप में अनुवाद करते हैं, केवल अपने शब्द विज्ञान संबंधी संगम की जंजीर की कड़ी में आपस में एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। और भी आगे वहां जहां ये शब्द एक दूसरे से जुड़े हुए हैं इतिहास के बारे में हमारे विचार की दार्शनिक उलझनें जो कि आधुनिक इतिहासवाद की उपज है. इसे मुस्लिम "इतिहास" से अलग कर देते हैं।

14वीं एवं 15वीं शताब्दी में मुस्लिम इतिहासकारों ने इतिहास एवं इतिहास लेखन की एक उचित परिभाषा की आवश्यकता महसूस की और उसकी अपने-अपने ढंग से अलग-अलग परिभाषायें की। इब्तखल्दून के अनुसार "इतिहास में ऐसी घटनाओं का उल्लेख होता है जो किसी एक विशेष युग या जाति की अनोखी विशेषता होती हैं।" मगरीबी इतिहास लेखन के उद्देश्य की परिभाषा करते हुए लिखता है कि इतिहास लेखन का उद्देश्य विश्व में घटित घटनाओं के बारे में सूचना देना है। मध्यकालीन पाश्चात्य इतिहासकार भी इसी तरह इतिहास की परिभाषा करते हुए लिखते हैं कि यह भूतकाल में घटी महान् घटनाओं की श्रृंखला है। काफियाजी के अनुसार, "इतिहास लेखन ज्ञान की वह शाख है जो समय विभाजनों और उनमें प्रचलित परिस्थितियों का और उन परिस्थितियों का जो उन समय-विभाजनों से जुड़ी हुयी हैं, की जाँच करती हैं।" सखवी के अनुसार इतिहास का संबंध मनुष्य एवं समय दोनों से होता है।

अंत में मुस्लिम इतिहास लेखन में वे ग्रंथ सम्मिलित हैं जिन्हें मुसलमान उनके साहित्यिक इतिहास के निश्चित समय में ऐतिहासिक ग्रंथ मानते थे और जो साथ ही उचित मात्रा में ऐसी सामग्री से युक्त होते थे जिसे ऊपर दी गयी हमारी इतिहास की परिभाषा के अनुसार ऐतिहासिक सामग्री के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

इस्लाम का उदय मुस्लिम इतिहास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना हैं। 622 ई. (1 हिजरी) को इस धर्म का सूत्रपात हुआ और इसी वर्ष से इस्लाम के इतिहास की शुरूआत हुयी। इस्लाम पर उसके पूर्ववर्ती अरब जगत् और जीवन का गहरा प्रभाव पड़ा। हजरत मुहम्मद से पहले अरब समाज अनेक कबीलों में बँटा हुआ था और इन कबीलों में आपस में हमेशा संघर्ष चलता रहता था। इनमें युद्ध, हिंसा और बदले की भावना व्याप्त थी। किंतु साथ ही प्रत्येक कबीलों में एकता का भाव था और प्रत्येक कबीला अपनी एकता और अक्षुणता के बनाए रखने के प्रति बड़ा सतर्क था। किंतु हिंसा, संघर्ष और वैमनस्य के इस युग में मी जो इस्लाम के पूर्व अरब समाज में-व्याप्त था, अरब जगत् में भावात्मक एकता स्थापित हो चुकी थी। मक्का के निकट उकाज का मेला जो वार्षिक तीर्थयात्रा के अवसर पर आयोजित किया जाता था, एक तरह

से विभिन्न अरबी कबीलों का राष्ट्रीय सम्मेलन होता था। इस अवसर पर सब कबीले अपनी आपसी शत्रुता को भुलाकर एकता के सूत्र में बंध जाते थे। इस समय अरब जगत् के विभिन्न भागों से आए हुए कवि सात मुअल्लकात सुनाते थे जिन्हें वहां एकत्रित सभी अरब समझते थे। इस प्रकार अरब जातीयता के भाव का आरम्भ हो रहा था। अरब जातीयता का यह भाव बाद में इस्लाम में प्रकट होकर एक सार्वभौम आदर्श में बदल गया।

इस्लाम में इतिहास का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। यही कारण है कि मुसलमान इतिहास के प्रति विशेष जागरुक रहे। अरबी के ग्रंथ "मफातिह-अल-उलूम" में इतिहास की गणना उन विद्याओं में की गयी है जो मुस्लिम प्रकृति और प्रतिभा में स्वभावत: बहुमूल हैं।

6.3 इस्लाम के उदय के पूर्व अरब में ऐतिहासिक चेतना:

क्या इस्लाम के उदय के पूर्व भी अरब में ऐतिहासिक चेतना विद्यमान थी? यह प्रश्न विवादास्पद है। किंतु पूर्व इस्लाम काल में अरब में साहित्यिक गतिविधियों की जो जानकारी हमें मिलती हैं उससे ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल में जो कुछ साहित्य रचा गया वह न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है बल्कि कुछ हद तक वह ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं और भविष्य में मुस्लिम इतिहास लेखन के विकास में इसका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। पूर्व इस्लाम काल के अरब साहित्य में हमें दो प्रकार की रचनायें मिलती हैं -

6.3.1 युद्धकालीन वृतांत:

यह प्रश्न कि क्या अरबों का युद्धकालीन साहित्य पूर्व इस्लाम युग में ही रचा गया और इसका क्या स्वरूप था? इसके बारे में निसंदेह यह कहा जा सकता है कि युद्धकालीन साहित्य की परंपरा इस्लाम के उदय के बहुत पहले से ही अरब में विद्यमान थी। इसकी खोज दमिश्क या बगदाद में किसी लेखक द्वारा मनोरंजन में ही नहीं की गयी थी। यह वास्तव में एक प्राचीन कबीलाई (sematic) पद्धति थी। वस्तुत: यह वही पद्धति थी जो बाइबल के प्राचीनतम इतिहास से संबंधित खंड में मिलती हैं। इन युद्धकालीन वृतांतों में एक ऐतिहासिक घटना का वर्णन एक कविता के साथ संबद्ध हो सकता है जिसको कि युद्ध के दौरान बोला जाता था। युद्ध का दृश्य एक छोटे गीत में भव्य रूप में प्रस्तुत किया जा सकता था जिसमें कि युद्ध में भाग लेने वाले एक योद्धा की उपलब्धि का वर्णन किया जाता था। ये युद्धकालीन वृत्तांत स्वयं में एक पूर्ण इकाई थे। ऐतिहासिक वृतांत में सम्मिलित किए जाने के पूर्व ये वृतांत स्वतंत्र कहानियों के रूप में प्रचलित थे। क्या कुछ वृतांत पूर्व इस्लाम युग में कभी-कभी लेखबद्ध भी कर दिए जाते थे? इसके बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। किंतु जिस ढंग से इस सामग्री का समान साहित्यिक वातावरण में प्रेषण (transmission) कर दिया जाता था वह इसके मौखिक प्रेषण (oral transmission) की ओर इंगित करती है। हो सकता है कि कुछ सामग्री समय-समय पर लेखबद्ध कर दी गयी हो। लेकिन कोई भी सुरक्षित सामग्री दूर-दूर तक भी लिखित स्त्रोत पर आधारित नहीं दिखायी देती।

हम निश्चित रूप से यह कह सकते हैं कि युद्धकालीन वृत्तांत पूर्व इस्लाम युग में भी प्रचलित थे। किंतु इससे यहां यह प्रश्न पैदा होता है कि क्या उनकी उपस्थिति अरब में ऐतिहासिक चेतना की ओर संकेत करती है। मूल रूप से इन वृत्तांतों की रचना ऐतिहासिक

साहित्य के उद्देश्य से नहीं की गयी थी। यही कारण है कि आरम्भिक मुस्लिम इतिहासकारों ने अपनी कृतियों में इन युद्धकालीन वृत्तांतों का बहुत संक्षेप में ही उल्लेख कर देने तक ही अपने आप को सम्मिलित रखा है। डबल्यु. कास्केल (W. Caskel) के अनुसार विस्तृत युद्धकालीन वृतांत तेरहवीं शताब्दी से पूर्व पूर्णत: ऐतिहासिक साहित्य की श्रेणी में स्वीकार नहीं किए गए थे। इस तरह इतिहासकारों ने उस सामग्री को स्वीकार करने में हिचकिचाहट दिखाया जिसको वे भाषा शास्त्रियों या साहित्यकारों के क्षेत्र के अंतर्गत मानते थे और वास्तव में, उत्पत्ति को दृष्टि से संकीर्ण अर्थ में युद्धकालीन वृत्तांत इतिहास की अपेक्षा बहुत हद तक साहित्य की श्रेणी में आते थे। ये वृत्तांत मौलिक रूप से लोगों के भावनात्मक मनोरंजन का कार्य करते थे। यद्यपि इनमें ऐतिहासिक तत्व अवश्य होते थे क्योंकि इनमें मुख्य घटनाओं का वर्णन लिखा होता था और इन घटनाओं का वर्णन करना वे अपना नैतिक कर्तव्य समझते थे। किंतु उनमें पूरी तरह से निरंतरता का अभाव होता था। उनको ऐतिहासिक कारण और परिणामों-के रूप में नहीं देखा जाता था और वे मुख्यत: तिथि रहित होते थे। इस प्रकार का भी कोई संकेत नहीं मिलता पूर्व इस्लाम युग में कभी भी ऐतिहासिक चेतना रही होगी जिससे कि उन वृत्तांतों को किसी प्रकार के ऐतिहासिक क्रम के अंतर्गत लाने का प्रयत्न किया गया हो। यही कारण है कि युद्धकालीन वृतांत ऐतिहासिक साहित्य के रूप में विकसित नहीं हो सकते यद्यपि उनकी तकनीक और शैली ने मुस्लिम इतिहास लेखन के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

6.3.2 वंशावलियाँ (genealogies):

जहां तक वंशावलियों का सवाल है, वंशावलियों का ऐतिहासिक अभिव्यक्ति के रूप में युद्धकालीन वृतांतों की अपेक्षा कम महत्व हैं तथापि ये इस बात का अधिक संकेत देती हैं कि अरब में पूर्व मुस्लिम काल में भी ऐतिहासिक चेतना विद्यमान थी यह मानना उचित नहीं होगा कि पूर्व इस्लाम युग में वंशावलियों के रख रखाव के अंतर्गत किसी भी बड़ी मात्रा में किसी विशेष वंश के सदस्य के साथ जुड़ी हुयी ऐतिहासिक घटनाओं का रख रखाव सम्मिलित होता था। ऐतिहासिक क्षेत्र में इस प्रकार का अतिक्रमण वंशावली का वास्तविक उद्देश्य कभी नहीं रहा इस धारणा के बारे में भी कम साक्ष्य उपलब्ध हैं कि वंशावली से संबंधित काव्य पूर्व इस्लाम युग में कभी भी लेखबद्ध किया गया होगा। वो सभी लोग जो कुछ निश्चित वंश कम के संबंधों में रूचि रखते थे, आवश्यक बातों को मौखिक रूप से याद रखते थे। इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति किसी एक विशेष वंश की जानकारी को सुरक्षित नहीं रखता था तो उस वंशावली का कोई महत्व नहीं रह जाता था और वह भूला दी जाती थी। पूर्व इस्लाम युग के अरब अपनी वंशावली संबंधी परंपराओं की किसी भी कमजोरी के बारे में नहीं जानना चाहते थे क्योंकि इससे उसका समस्त सामाजिक एवं राजनैतिक संगठन नष्ट हो जाता। परिणामस्वरूप, वंशावली साहित्यिक रूप में विकसित नहीं हो सकी और वास्तव में मुस्लिम इतिहास लेखन के साहित्यिक रूपों को निर्मित करने में इसकी बहुत तुच्छ भूमिका रही थी।

6.3.3 शिलालेख (Inscription):

अधिक सूचना के लिए हमें दक्षिण अरब में शिलालेखों का अध्ययन करना चाहिए। वे बहुत बड़ी संख्या में सुरक्षित हैं। उनमें से अधिकांश का इतिहास से कोई संबंध नहीं है। इन

शिलालेखों में निर्माण एवं सार्वजनिक योजनाओं का बड़े पैमाने पर उल्लेख किया जाता था किन्तु साथ ही इस प्रकार के इतने अधिक शिलालेखों का अस्तित्व यह प्रकट करता है कि दक्षिण अरब में राजनैतिक औ सांस्कृतिक कार्यों की ऐतिहासिक महत्ता के बारे में एक निश्चित चेतना और महान् कार्यों की याददाश्त को सुरक्षित रखने की इच्छा विद्यमान थी। अभिलेखों के बारे में हमारी यह धारणा और भी अधिक पुष्ट हो जाती हैं कि जब हम इन अभिलेखों में समकालीन महान् सैनिक घटनाओं का सावधानी पूर्ण वर्णन पाते हैं ये अभिलेख यह दर्शाते हैं कि दक्षिण अरब में एक 'निश्चित ऐतिहासिक चेतना विद्यमान थी जो बाद में मुस्लिम युग में पूरी तरह से विकसित हो गया। फिर भी यदि हम यह तथ्य स्वीकार भी कर ले कि मुस्लिम इतिहास के विचार की उत्पत्ति सम्भवत: दक्षिण अरब में हुयी तब भी हमारे पास यह दिखाने के लिए कुछ नहीं है कि दक्षिण अरब में इतिहास लेखन का कार्य होता था और इसका इस्लाम के इतिहास लेखन पर कोई प्रभाव पडा था।

6.4 यहूदियों और इसाईयों की भूमिका:

इस्लाम के उदय के पूर्व अरब में ऐतिहासिक चेतना और इतिहास लेखन में यहूदियों और इसाईयों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही हैं। इस अंतरिप में दोनों धर्मो के अनुयायी बहुत बड़ी संख्या में रहते थे। यहूदियों और इसाईयों को निश्चित रूप से इतिहास और इतिहास लेखन को विभिन्न शैलियों की प्राथमिक जानकारी थी जो उन्हें बाइबल से प्राप्त हुयी थी। फिर भी यह नहीं माना जा सकता कि उन्होंने किसी भी प्रकार की इतिहास लेखन की शैली का विकास किया होगा। लेकिन फिर भी उनके पास ऐसी चाबी थी जिसने पैगम्बर मोहम्मद के रूप में मुसलमानों के लिए जीवन के प्रति ऐतिहासिक दृष्टिकोण का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

6.5 इस्लाम में ऐतिहासिक चेतना का विकास:

इस्लाम का जिस तेजी से विस्तार हुआ उससे इस्लाम के इतिहास दर्शन का विकास हुआ। मुहम्मद साहब को साक्षात्कार के क्षणों में जिस पुरातन सत्ता का ज्ञान हुआ उससे संपूर्ण इतिहास का क्रम स्पष्ट हो गया। युग का प्रारम्भ, स्वर्ण और पृथ्वी का निर्माण, स्त्री-पुरुष की रचना, ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध आचरण किए जाने पर दिए जाने वाले दैवीय दंड, पतन के युग का आगमन, पैगम्बरों के द्वारा ईश्वर के संदेश का पुन: प्रतिपादन और फलस्वरूप समृद्धि, प्रसार, शक्ति और सुख का संपादन ये सब घटनायें और प्रक्रियाओं का मुहम्मद साहब को अनुभव हो गया। कुरान में इन प्राचीन घटनाओं के बार-बार संकेत और उल्लेख मिलते हैं। प्रलय का वृतांत निष्कासन के समय मिसियों की भाग्यावस्था, आद और तमूद के विध्वंस के कथानक, मोह, मूसा, हूद, सालिह आदि के अवतरण का विवरण कुरान में विभिन्न स्थानों पर मिलता है। यही नहीं कुरान में सृष्टि के अंत (मशहर) और ईश्वरीय निर्णय के भी ज्वलंत उदाहरण मिलते हैं। इस प्रकार कुरान में सृष्टि का समस्त इतिहास सुरक्षित है। किंतु इसमें इतिहास के इस सार्वभौम दृष्टिकोण के साथ-साथ अरब जातियों के असबियाह (सामूहिक चेतना) को सुरक्षित रखने वाली वंशावलियों की भावना भी सम्मिलित हो गयी है। खलीफा उमर के समय जब मुहम्मद साहब के परिवार के सदस्यों और साथियों एवं उनके वंशजों को वृतियों देने के लिए तथा मुस्लिम योद्धाओं में युद्ध और लूट में मिली सामग्री बांटने के लिए तालिकायें (दबाबीन) तैयार की गयीं तो उन्हें प्राचीन वंशावलियों के आधार पर तैयार किया गया। इससे अरबों के प्राचीन वंशों के इतिहास के

अध्ययन को बड़ी प्रेरणा मिली। इस प्रकार अरब वंशावलियों की परंपरा मुस्लिम जगत के इतिहास में बदल गयी।

6.6 मुस्लिम इतिहास लेखन की आधारभूत पद्धतियाँ:

इस्लाम के उदय के बाद अरब और अन्य मुस्लिम देशों में इतिहास लेखन की परंपरा का अत्यधिक विकासव हुआ। मुस्लिम इतिहास लेखन की कुछ आधारभूत पद्धतियाँ जो इस काल में प्रचलित थी वे निम्नलिखित थी।

6.6.1 खबर इतिहास:

मुस्लिम इतिहास लेखन की प्राचीनतम पद्धति खबर है जिसकी गणना युद्धकालीन वृतांतों के बाद की जाती है। यह केवल एक अकेली घटना का पूर्ण विवरण है जो कि कुछ एक पृष्ठों से अधिक का नहीं होता। खबर पद्धति की तीन विशेषतायें महत्वपूर्ण हैं- प्रथम, प्रकृति से ही इसमें दो या अधिक घटनाओं के बीच कोई संबद्ध नहीं होता है। प्रत्येक खबर अपने आप में पूर्ण होती है और किसी भी प्रकार की सहायक सामग्री का इसमें कोई उल्लेख नहीं होता है। यह भी स्पष्ट है कि लंबे समय का इतिहास लिखने में खबर पद्धति बिल्कुल अव्यवस्थित हो जाती है, क्योंकि खबर पर जब तक यह अपना सच्चा स्वरूप नहीं खो देती, एक निश्चित मात्रा तक ही दबाव डाला जा सकता है।

द्वितीय, खबर पद्धति ने अपने रो पूर्व प्रचलित ऐतिहासिक पद्धति-युद्धकालीन वृतांत की तरह एक संक्षिप्त कहानी के चरित्र को बनाए रखा। इनमें जिस प्रकार युद्ध के दृश्यों का वर्णन किया जाता था उसके कारण ये मनोरंजन पूर्ण बने रहे किंतु इससे उनमें वास्तविक तथ्य छिप गए। किंतु सामान्य रूप से खबर इतिहास लेखन की इस विशेषता ने बाद के मुस्लिम इतिहास लेखन को रूखे इतिहास की श्रेणी से ऊपर उठा लिया और लोगों में इसके प्रति ऐतिहासिक रुचि पैदा की। खबर पद्धति के उच्च साहित्यिक गुणों के कारण ही अदब ग्रंथों जैसे उदाहरण के लिए इब्न अब्दरानिह के इकद में इतिहास से संबंधित कुछ अध्याय जोड़े जाते थे।

तीसरी महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि युद्धकालीन वृतांतों के निरंतरता के रूप में और अभिव्यक्ति की कलात्मक शैली के रूप में खबर इतिहास में काव्यात्मक पुट की उपस्थिति अनावश्यक होती थी। वास्तव में ऐसा कोई भी ऐतिहासिक ग्रंथ जो कि काव्यात्मक उद्धरणों से बिल्कुल रहित हो, मिलना बहुत मुश्किल है।

यह बात पर्याप्त रूप से स्थापित हो गयी है कि खबर पद्धति पूर्व इस्लाम युग में ही अस्तित्व में आ गयी थी और बाद में सम्भवत: बिना किसी बाधा के इसकी मौखिक या लिखित साहित्यिक परंपरा इस्लाम में प्रवेश कर गयी होगी। किंतु मुस्लिम इतिहास लेखन में खबर पद्धति पर लिखा गया पहला ग्रंथ कौन सा था? इस प्रश्न का कोई समुचित उत्तर नहीं मिलता। ऐसा जान पड़ता है कि खबर इतिहास लेखन के प्रारम्भिक ग्रंथ प्राइवेट पुस्तकें और विद्वानों की नोट बुकें रही होंगी जिनके बारे में कोई स्पष्ट और विश्वसनीय सूचना हमें उपलब्ध नहीं है।

खबर पद्धति ऐसे ग्रंथों' को छोडकर जिनमें बिना किसी प्रकार के वर्णन के केवल घटनाओं या नामों की सूची दी गयी है, किसी न किसी रूप में समस्त मुस्लिम ऐतिहासिक ग्रंथों में प्रयुक्त की गयी है। किंतु अन्य आधारभूत पद्धतियों तरह यह पद्धति अपने वास्तविक रूप में

बहुत ही कम प्रयुक्त हुयी है। यह पद्धति अक्सर इतिहास लेखन के अन्य तत्वों के साथ जुड़ गयी है।

6.6.2 कालक्रमात्मक इतिहास लेखन (The annalistic Historiography):

इस पद्धति के अंतर्गत घटनाओं का वर्णन वर्षों के क्रम में किया जाता है। इतिहास लेखन की इस पद्धति का पूर्ण रूप से विकास महान् इतिहासकार अलतबरी (838-923 ई.) के समय में हुआ। तबरी का इतिहास "तारीख-अल रैसूल वल मुलुक" जो दसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में प्रकाशित हुआ, कालक्रमात्मक पद्धति के आधार पर लिखी गयी एक उत्कृष्ट कृति है। इसमें कालक्रमात्मक पद्धति से परम्पराओ की अक्षुणता (इसनाद) के आधार पर 915 ई. तक का इस्लाम का पूर्ण इतिहास लिपिबद्ध है। फ्रेज रोजे थल का मानना है कि "यह मानना गलत नहीं होगा कि कालक्रमात्मक पद्धति से लिखे गए मुस्लिम इतिहास ने यूनानी और सीरियायी इतिहास लेखन से प्रेरणा प्राप्त की है। यद्यपि ऐसा कोई निश्चित ग्रंथ नहीं है जिससे मुस्लिम इतिहासकारों के लिए एक प्रेरणा का काम किया हो। किंतु यह निश्चित है कि आरम्भिक मुस्लिम विद्वानों में कालक्रमात्मक पद्धति से इतिहास लेखन का विचार इसाई विद्वानों या इसाई से मूसलमान बने विद्वानो के संपर्क में आने से आया।'

इस्लाम में कालक्रमात्मक इतिहास लेखन की पद्धति के विकास के लिए यह मानना महत्वपूर्ण है कि प्रकृति से ही यह शैली प्रधान रूप से केवल तथ्यों से संबन्धित है जो समकालीन स्रोतों द्वारा लेखबद्ध किए गए थे और जिनमें न तो किसी बाद के इतिहासकार द्वारा कोई सुधार किया जा सकता था और न ही उसका विस्तार किया जा सकता था। बाद के कालक्रमात्मक के आधार पर लिखे गए ग्रंथ पहले के लेखकों द्वारा इसी प्रकार के लिखे गए ग्रंथों के क्रम में लिखे गए माने जाते थे। इस पद्धति से लिखे गए ग्रंथ का महत्वपूर्ण भाग इसका समकालीन खंड होता था। इस प्रकार के ग्रंथ के लिखने के लिए सूचना का महत्वपूर्ण स्रोत बहुधा लेखक द्वारा लिखी गयी डायरी हो सकती थी। इस प्रकार की डायरी का सर्वोत्तम उदाहरण हमें ग्यारहवीं शताब्दी में हुए प्रसिद्ध इतिहासकार अबू अली इब्न अल बन्ना की डायरी का मिलता है।

6.6.3 राजवंश संबंधी इतिहास लेखन (Dynastic Historiography):

प्राचीनतम सुरक्षित ऐतिहासिक ग्रंथ विभिन्न शासकों के शासनकाल के ही क्रम में लिखे गए हैं और उनमें कालक्रम संबंधी विभाजन पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। इब्न इशाक का ग्रंथ हिस्ट्री ऑफ दी केलिपस इसका उदाहरण है यद्यपि इराके बारे में हमको बहुत कम जानकारी मिलती है। किंतु इस पद्धति पर लिखा गया सर्वोतम उदाहरण अलयाकूबी द्वारा लिखा गया ग्रंथ है। दीनवरी द्वारा रचित अखबार-अत-तिवाल भी इस पद्धति पर लिखा गया एक अन्य उच्च कोटि का ग्रंथ है। अल बलदूरी रचित अंसाब भी इस पद्धति से लिखा गया ग्रंथ है। इस बात में थोड़ा भी संदेह नहीं हो सकता कि उमैय्या और अब्बासी खलीफाओं के बारे में लिखे गए प्राचीन ग्रंथों में भी इसी पद्धति का अनुसरण किया गया है। राजवंश संबंधी इतिहास के लिखे जाने का कम यह है कि यह प्राचीनतम शासक से प्रारम्भ होकर वर्तमान शासक तक आता है।

वस्तुत: शासकों के क्रम में (राजवंश संबंधी) इतिहास लेखन की पद्धति बहुत प्राचीन है और इसका बड़ी मात्रा में प्रयोग किया गया है। इसकी जानकारी हमें प्राचीन पूर्वी देशों और यूनान तथा रोम के इतिहास लेखन से भी होता है। ऐसा जान पड़ता है कि राजवंश संबंधी जो पद्धति मुस्लिम इतिहास लेखन में अपनायी गयी हैं वह इसमें इरानी इतिहास लेखन के प्रभाव से आयी हैं। पहला प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासकार जिसने किसी राजवंश का इतिहास लिखा वह मुहम्मद सालिह था जो अब्बासी खलीफाओ का समकालीन था और उसने अब्बासी वंश के खलीफाओं का इतिहास लिखा है। किंतु साथ ही यहा हमको यह भी नहीं भूल जाना चाहिए कि इसी पद्धति पर लिखे गए इससे भी अधिक प्राचीन ग्रंथ हमें उमैय्या वंश के बारे में मिलते हैं। वास्तव में फिहरिश्त से हमें यह ज्ञात होता है कि अल कलबी जिसकी मृत्यु 767 ई. के लगभग हुई उसने मुआविया और उमैय्या खलीफाओं की जीवन कथा लिखी है। यह ग्रंथ राजवंश संबंधी इतिहास लेखन पद्धति पर लिखे गए बाद के ग्रंथो के समकक्ष उमैय्या वंश का इतिहास हो सकता है।

6.6.4 वंशावली संबंधी पद्धति (The genealogical arrangement):

आठवीं एवं नवीं शताब्दी ईस्वी में भी इतिहासकार और भाषाविद् वंशावलियों का भी वर्णन करते थे। उनके ग्रंथ विभिन्न अरब कबीलों के समूह के विभिन्न सदस्यों व उनके कार्यों के बारे में खबर पद्धति पर लिखे गए संग्रह भी होते थे। वंशावलियों के रूप में लिखे गए प्रारंभिक ग्रंथों में एक प्रमुख ग्रंथ मुअरिज अमर अस्सदूसी कृत "हल्फ मिननसब कुरैश" हैं जो सामान्य कुरैशी परिवारों पर लिखा गया है। इसी पद्धति पर लिखे गए पारम्भिक ग्रंथों का एक अन्य उदाहरण अज जुबैर बक्कार द्वारा लिखा गया प्रसिद्ध ग्रंथ नसब कुरैश है। किंतु इन दोनों ग्रंथों में ऐतिहासिक सूचना बहुत कम मिलती हैं और यही बात हमें बाद में वंशावली संबंधी 'पद्धति पर लिखे गए अन्य ग्रंथों' में भी मिलती हैं। किंतु इतिहास लेखन की वंशावली संबंधी पद्धति का प्रयोग बड़े पैमाने पर अल बलादूरी ने अपने ग्रंथ किताब अल अन्साब में किया है। किंतु अलबलादूरी के अन्साब में प्रयुक्त-वंशावली पद्धति पेचिदा मुस्लिम समाज का इतिहास लिखने के लिए उचित माध्यम नहीं थी और यही कारण हैं कि नवीं शताब्दी के बाद यह पद्धति अरब में स्वत: समाप्त हो गयी। यद्यपि बाद में स्पेन में यह पद्धति काफी लोकप्रिय हुयी और पश्चिमी मुस्लिम जगत् में भी इस पद्धति पर ऐतिहासिक महत्व के ग्रंथों की बड़े पैमाने पर रचना की गयी।

6.6.5 तबकात पद्धति:

उपर्युक्त पद्धतियों के अलावा तबकात (वर्गीकृत चरित्र चित्रण) पद्धति भी मुस्लिम इतिहास लेखन की एक महत्वपूर्ण पद्धति थी। वास्तव में तबकात पद्धति शुद्ध रूप से मुस्लिम थी। इस पद्धति का हिजरी सम्वत् की दूसरी शताब्दी में विकास हुआ। लेकिन तबकात पद्धति ऐतिहासिक विषयों के बजाय। धार्मिक विषयों पर लिखे जाने के लिए अधिक उपयुक्त मानी जाती थी।

मुस्लिम इतिहास लेखन की विभिन्न पद्धतियों की विवेचना करने के बाद अब हम देखेंगे कि प्रारम्भिक खलीफाओं के समय में तथा अनके बाद अरब तथा अन्य मुस्लिम राज्यों में

मुस्लिम इतिहास लेखन का विकास किस प्रकार हुआ? कौर-कौन से प्रसिद्ध इतिहासकार हुए और अनका मुस्लिम इतिहास लेखन में क्या प्रमुख योगदान रहा?

6.7 उमैय्या खलीफाओं के समय का इतिहास लेखन:

प्रारम्भिक खलीफाओं को अपने से पहले के शासकों के कार्यों और चरित्र के बारे में जानने में बड़ी रूचि थी। श्रद्धालु मुसलमान पैगम्बर मोहम्मद और उनके साथियों के जीवन चरित्र में अपार श्रद्धा रखते थे। मुहम्मद साहब के परिवार सदस्यों और उनके साथियों तथा वंशजों की वृत्तियां देने के लिए तालिकायें (दवाबीन) तैयार करने के लिए अरबों का वंशगत इतिहास जानना आवश्यक था। इस्लाम का जिस तेजी से प्रसार हुआ उसने मुस्लिम जगत् में इतिहास की चेतना पैदा कर दी थी। फलस्वरूप दक्षिण अरब के लेखक आबिद इब्न शरयह ने मुआविया के निमंत्रण पर दमिश्क जाकर अरब के विभिन्न कबीलों और राजाओ का इतिहास लिखा। उनकी एक पुस्तक "किताब-अल-मुलुक" व अखबार-अल-माजीन" मसूदी के समय तक प्रचलित थी। इसी समय यमन निवासी वाहब इब्न मुतब्बिह ने जो एक फारसी यहूदी था, "अल तीजान फी मुलुक हिमयार" नामक ग्रंथ की रचना की।

6.8 अब्बासी खलीफाओं के काल में इतिहास लेखन:

उमैय्या वंश के पतन के पश्चात् अब्बासी खलीफाओं के युग का आरम्भ हुआ। अब्बासी खलीफाओं के समय में दमिश्क के स्थान पर बगदाद उनकी राजधानी बना। यह एक ऐसा नगर था जहां सब देशों के लोग एकत्रित होते थे। इससे सांस्कृतिक आदान प्रदान में बहुत वृद्धि हुयी। इस सांस्कृतिक आदान-प्रदान से इतिहास लेखन को भी एक नवीन प्रेरणा प्राप्त हुयी। परिणामस्वरूप अब्बासी खलीफाओं के युग में बड़ी संख्या में उच्च कोटि के ऐतिहासिक ग्रंथों की रचना हुयी। उदाहरण के लिए कूफा के हिसाम अल कल्बी ने इस्लाम से पूर्व के अरब जगत् का इतिहास लिखा। मदीने के इस्त इशाक ने पैगम्बर मुहम्मद का प्रसिद्ध जीवन चरित्र "सीरात रसूल अल्लाहलिखा। इसी समय मूसा इष्ट उकबाह ने 758 ई. में और अलबाकिदी ने 822-23 ई. में मुस्लिम विजयों और पैगम्बर तथा उनके साथियों के इतिहास लिखे। 870 ई. में मिस्त्र के लेखक इब्न अब्द दल हकम ने अपने ग्रंथ फुतू-ह मिश्र व अखबारूह में मिस्र, उतरी अफ्रीका और स्पेन की विजय का इतिहास लिखा। लगभग इसी समय 892 ई. में फारस के लेखक अहमद इदन यला अल बलाजुरी ने फुतू-ह अल बुलदानु अन्साब अल अशराफ में विभिन्न नगरों और देशों के बिखरे हुए वृत्तांतों को एकत्रित और समन्वित किया।

अब धीरे-धीरे मुस्लिम इतिहास लेखन की शैली में विकास हुआ और बड़े पैमाने पर क्रमबद्ध इतिहासों की रचना प्रारम्भ हुयी। क्रमबद्ध इतिहास का श्रेष्ठ उदाहरण मुहम्मद इब्न मुस्लिम अल दिनावरी की पुस्तक किताब अल मारिफ हैं जिसकी रचना उसने 889 ई. में की। इसी का समकालीन अबू हनीफा अहमद इब्न दाऊद अल दिलावरी था जिसने 895 ई. में अल अखबार अल तिवाल नाम से एक ग्रंथ की रचना की जो फारसी दृष्टिकोण से लिखा हुआ एक प्रकार का विश्व इतिहास है। लगभग इसी समय प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता और इतिहासकार इब्न वाजीह अल याकूबी ने शिया संप्रदाय के एक सार्वभौम ग्रंथ "तारीख" की रचना की जिसमें हिजरी सन् 258 (872 ई.) तक का शिया सम्प्रदाय का इतिहास मिलता है। इसमें अलयाकूबी ने प्राचीन

एवं स्वच्छ शिया परंपराओं का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। 1030 ई में मिस्कवियाह ने जिसकी गणना प्रमुख अरबी इतिहासकारों में की जाती हैं, तजारिब अल उमाम नाम से एक सार्वभौम ग्रंथ की रचना की। इस ग्रंथ में उसने 980 ई. तक का अरब का संपूर्ण इतिहास लिखा है।

किंतु अरब इतिहासकारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण इतिहासकार अलतबरी (838-923 ई.) और अलमसूदी हुए हैं। अलतबरी का पूरा नाम अबूजाफर मुहम्मद इब्न जरीर अलतबरी था। उसका जन्म फारस के पहाड़ी जिले तबरिस्तान में हुआ था। उसकी प्रमुख कृति तारीख अल रसूल बल मुलूक हैं। अधिकांश अरब इतिहासकारों के समान तबरी ने भी घटनाओं को तिथि क्रम के आधार पर व्यवस्थित किया है। एक तिथि से संबंधित समस्त घटनाओं को एक ही जगह एकत्रित कर दिया। इस प्रकार उसने प्राचीन पद्धति के साथ-साथ फारसी के प्रसिद्ध ग्रंथ "खूदाये नामें" की शैली का भी अनुसरण किया। अपने ग्रंथ की रचना करने में अलतबरी ने अपने समय की साहित्यिक रचनाओं के उपयोग के साथ-साथ अपनी यात्राओं के दौरान उपलब्ध सूचनाओं और किंवदात्तियों तथा उन मौखिक परंपराओं का जो उसे बगदाद तथा अन्य विद्या केंद्रों के शेखों से प्राप्त हुयी थी, का भरपूर प्रयोग किया है। अलमसूदी जिसे "अरबों का हेरोडोटस" कहा जाता है, का प्रमुख ग्रंथ मरूज अल जहाब व मादीन अल जौहर है जिसे उसने तीस जिल्दों में लिखा है। इस ग्रंथ में मसूदी ने अब तक प्रचलित शैलियों से भिन्न शैली का प्रयोग किया जो अरब इतिहास लेखन में एकदम नवीन थी। उसने तबरी की भाँति घटनाओं को तिथियों के अनुसार संकलित न करके उनको वंशों, शासकों और जातियों के आधार पर व्यवस्थित किया यह शैली तबरी की शैली से भिन्न थी। अरब इतिहास लेखन में यह एकदम नवीन शैली थी जिसका बाद में इब्न खल्दुन तथा अन्य इतिहासकारों द्वारा बड़े पैमाने पर प्रयोग किया गया। इस्लामी इतिहास लेखन में ऐतिहासिक दृष्टांतों का उचित प्रयोग उसी से प्रारम्भ हुआ। उसने भी ज्ञान वृद्धि के उद्देश्य से अपने मूल स्थान बगदाद से जंजीबार तक की यात्रा की। उसके जीवन के अंतिम वर्ष सीरिया एवं मिस्त्र में व्यतीत हुए। यहीं रहकर उसने अपने उपर्युक्त ग्रंथ की रचना की। उसकी उदारता तथा वैज्ञानिक जिज्ञासा ने उसे, मुस्लिम विषयो के अतिरिक्त भारतीय, फारसी, रोम तथा यहूदी इतिहास की ओर भी आकृष्ट किया था । उसकी मृत्यु 956 ई. में हुई। अपनी मृत्यु के पूर्व उसने "अलतनवीह व अल इशराफ" नामक एक और ग्रंथ की रचना की जिसमें उसने इतिहास दर्शन तथा प्राकृतिक जगत् के विषय में अपने विचारों को संग्रहीत और लेखबद्ध किया। मसूदी का मानना था कि जलवायु, भौगोलिक परिस्थिति और प्राकृतिक अवस्था का मनुष्य और जाति के जीवन पर गम्भीर प्रभाव पड़ता है। उसने धर्म (दीन) और राज्य (मुल्क) के पारस्परिक संबंधों का भी गहरा अध्ययन किया और इनके पतन की प्रक्रिया पर अपने महत्वपूर्ण विचार प्रकट किए। उसके मतानुसार किसी देश या जाति की शासन व्यवस्था उस देश या जाति के धार्मिक विश्वास, आर्थिक परिस्थिति, एक साथ रहने वाले लोगों के स्वभाव और उसके पडोसी देशों के प्रभाव, इन चार तत्वों पर आधारित होती है।

वास्तव में तबरी और मसूदी की रचनाओं में अरब इतिहास लेखन अपनी उत्कृष्टता के चरम बिंदु पर पहुँच गया। इसी युग का एक और प्रसिद्ध इतिहासकार अल असीर (1160-1234) ई. है। उसकी प्रमुख रचना अल कामिल फि अल तारीख इतिवृत्तों की पूर्ण पुस्तक है जो वास्तव में तबरी के ग्रंथ का संक्षेप मात्रा हैं किंतु इसमें उसने 1231 ई. तक की घटनाओं का वर्णन किया है। इस ग्रंथ में वर्णित इसाई धर्म युद्धों (क्रूसेड) से संबंध रखने वाला भाग इब्न अल असीर का मौलिक योगदान है। मंगोल आक्रमणकारियों का मुस्लिम देशों पर जो आतंक फैला हुआ था उसकी इब्न अल असीर को पूर्ण जानकारी थी ओर उसने इसका अपने उपरोक्त ग्रंथ में रोमांचकारी वर्णन किया है। उसका घटनाओं के पारस्परिक कार्य-कारण संबंध में विश्वास था। अत: उसका मानना था कि मंगोल आक्रमणकारियों की सफलता का मुख्य कारण अलाउदीन रव्वारज्मशाह द्वारा की गयी भूलें थीं। ई.जी. ब्राउन ने इब्न अल असीर की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि वह एक शांत और गम्भीर निरीक्षक था।

6.9 ईरान का सांस्कृतिक और इतिहास लेखन:

ईरान पर अरबों का अधिकार हो जाने के पश्चात् ईरान का सांस्कृतिक पुनरुत्थान बड़ी तेजी से हुआ। इसी समय फारसी भाषा साहित्य का माध्यम बनी। बुबई, सामानी जियारी वंश ईरानी थे। उनके शासनकाल में खुरासान, तबरिस्तान और दक्षिणी फारस मुस्लिम संस्कृति के प्रमुख केंद्र बन गए थे। सुलतान महमूद गजनवी (998-1030 ई.) ने फारसी भाषा को बड़ा प्रोत्साहन दिया। जिसके परिणामस्वरूप उसके समय में फारसी भाषा के अनेकों उत्कृष्ट साहित्यिक ग्रंथों की रचना हुयी। फिर दौसी का शाहनामा इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। निजामुल मुल्क (1017-1092 ई.) का प्रसिद्ध ग्रंथ "सियासतनामा" फारसी ग्रंथ का उत्कृष्ट नमूना है। मंगोलों के ईरान पर आक्रमण के बाद फारसी का महत्व और भी बढ़ गया और यह इतिहास रचना का माध्यम भी बन गयी। फलस्वरूप फारसी भाषा में बड़ी संख्या में ऐतिहासिक ग्रंथों' की रचना हुयी। इन फारसी इतिहासकारों का दृष्टिकोण बड़ा विस्तृत और गम्भीर था।

6.10 मंगोल आक्रमण और इतिहास लेखन:

मुस्लिम देशों पर मंगोल आक्रमणों का मुस्लिम इतिहास लेखन और इतिहास के अध्ययन पर गहरा प्रभाव पड़ा और इससे इतिहास के अध्ययन और लेखन की दिशा ही बदल गयी। 1258 ई. में मंगोल नेता हुलाकू ने बगदाद का घेरा डाला जो लगभग एक सप्ताह तक चला। इस आक्रमण के दौरान मंगोलों द्वारा बड़ी संख्या में मुसलमानों का नरसंहार किया गया तथा मुस्लिम कला, साहित्य और संस्कृति के अनेक केंद्र नष्ट भ्रष्ट कर दिए गए। खलीफा अल मुसतसीम बिल्ला को डंडों से पीट पीट कर मार डाला गया। इस प्रकार इस्लाम की अजेयता का स्वप्न भंग हो गया और मुस्लिम जगत् में मंगोलों का एक भयंकर आतंक छा गया। इस बात ने सब लोगों को आश्चर्यचकित कर दिया कि उत्कृष्ट अरबी घोड़ों पर सवार कवचधारी प्रशिक्षित मुस्लिम सैनिक टट्टुओं पर सवार और केवल भाले घुमाते हुए वस्त्र और कवचहीन मंगोलों से किस प्रकार हारकर काल के गाल में समा गए। बताया जाता है कि जब फलकुद्दीन मुहम्मद बिन एदीमिर ने यह वृतांत अपने मित्रों को सुनाया तो वे आश्चर्यचकित रह गए। मंगोलों द्वारा किए गए इस विनाश का जलालुद्दीन अबू जाफर-ने अपने ग्रंथ फिताबुल फखरी में उल्लेख किया है। इस लेखक और मुस्लिम समाज के सामने यह प्रश्न था कि मुस्लिम साम्राज्य जो सिर दरया और काकेशस

से अटलांटिक और अरब तथा हिंद महासागर तक के विशाल प्रदेश तक फैला हुआ था, कैसे असभ्य और बर्बर मंगोलों द्वारा नष्ट भ्रष्ट कर दिया गया। इस प्रश्न के उत्तर में जलालुद्दीन अबू जफर ने 622 ई. से 1258 ई तक का इस्लाम का संपूर्ण इतिहास लिखा जिसमें उसने तत्कालीन समाज को यह दर्शाया कि इस्लाम के आरम्भिक काल में उसमें कितना तेज और गति थी और किस प्रकार उसमें धीरे-धीरे कमी आती चली गयी।

इस समय मंगोलों ने भी मुस्लिम इतिहासकारों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। उनका इतिहास सबके लिए एक पहेली था। सभी लोगों में मंगोलों का इतिहास जानने के बारे में बड़ी जिज्ञासा थी। अत: अलाउद्दीन अता मलिक जुबैनी (1226-83 ई.) और फज़्लुल्लाह रशीउद्दीन्ह तबींब अबुलखैर हमदानी (1243-1318 ई.) नामक दो प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासकारों ने मंगोलों का इतिहास लिखकर यह कमी पूरी की जुबैनी ने ईरान और ईराक पर प्रलयंकारी मंगोल आक्रमणों के दृश्य स्वयं अपनी ऑखों से देखे थे। अत: उसने अपनी पुस्तक तारीखे जहाँगुशा में ईरान और ईराक का पृष्ठभूमि में मंगोल का इतिहास लिखा है। इस ग्रंथ के तीन भाग हैं - प्रथम में चंगेज खाँ तक का मंगोलों का इतिहास हैं, दूसरे में रव्वारज्मशाही वंश का वृतात है और तीसरे में अलामूत के इस्माइलियों तथा उनके विनाश का विवरण दिया गया है।

रशीदुद्दीन ने जो मंगोल साम्राज्य में कई उच्च पदों पर काम कर चुका था, मंगोल शासक गामजान खाँ (1295-1304) के आदेश पर "तारीखे गाजानी" के नाम से तुर्को और मंगोलों का इतिहास लिखा। इसके बाद उलजैतु खुदाबन्दा (1305-1316 ई.) के आदेश पर एक और ग्रंथ जामी-उत-तवारीख की रचना की। जामी-उत-तवारीख दो भागों में लिखा गया विश्व का इतिहास है। इसके प्रथम भाग में रशीदुद्दीन ने विश्व का इतिहास लिखा है और दूसरे भाग में विश्व का भूगोल दिया है। प्रथम भाग विश्व का इतिहास भी चार भागों में लिखा गया है। पहले तीन भागों में ईरान और अरब जगत् का इतिहास दिया गया है और चौथे भाग में तुर्क, चीनी, यहूदी, फिरंगी और हिंदु जाति का इतिहास है। इतिहास का यह विश्वव्यापी दृष्टिकोण सर्वप्रथम रशीदुद्दीन के उक्त ग्रंथ में दिखायी देता है।

मंगोलों के शासनकाल में ईरान एक प्रकार से विभिन्न संस्कृतियों का संगम स्थल बन गया था। वहा इस काल में चीनी, काश्मीरी, हिंदू बौद्ध, इसाई, यहूदी, फिरंगी आदि बहुत से देशों और धर्मो के लोग आ आकर बस गए थे। इन लोगों का सम्मिलन और सम्मिश्रण विश्व संस्कृति को मंगोलों की विशेष देन है। ऐसे वातावरण में यह स्वाभाविक था कि उस युग के इतिहासकार का दृष्टिकोण सार्वभौम हो। अत: हम देखते हैं कि रशीदुद्दीन ने ही सबसे पहला विश्व इतिहास लिखा। जैसा कि रशीदुद्दीन से हमें जानकारी मिलती हैं चीन का इतिहास लिखने में उसे दो चीनी विद्वान ली-ता-ची और मक-सुन से मदद मिली। भारत का इतिहास लिखने में उन्हें कश्मीर के बौद्ध विद्वान कमलश्री से बहुमूल्य सूचनायें मिलीं। यूरोप का इतिहास लिखने में उसे सम्भवत: पीसा के व्यापारी ड्योलुस से सहायता मिली। मंगोलों का इतिहास लिखने में उसे स्वंय मंगोल शासक गाजान खाँ और पूलाद चिड्चाड़ से महत्वपूर्ण मदद मिली। इस प्रकार रशीदुद्दीन विश्व इतिहास की कल्पना और उसे मूर्तरूप देने में सफल हो सका। उसके अनुसार एशिया के रंगमंच पर मंगोलों का उदय ऐसी ही घटना थी जैसे सातवीं शताब्दी में इस्लाम का आगमन।

रशीदुद्दीन के बाद नसीरूद्दीन अल बैदावी और मिनहाज अल सिराज ने भी इस परंपरा के अंतर्गत अपने ग्रंथ लिखे। इसाई धर्म युद्धों (क्रूसेडद्ध ने मी इस्लामी इतिहास लेखन के क्षेत्र का

विस्तार किया। बहाउद्दीन (1145-1234 ई.) जो अलेफों का निवासी था तथा उसाम इब्न मुनकीज और अबू शास्त्र (1203- 1268) आदि इतिहासकारों ने अपनी रचनाओं में इसाईयों और मुसलमानों के सामरिक और सांस्कृतिक संबंधों पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

6.11 भारत में मुस्लिम इतिहास लेखन:

भारत में मुश्लिम सत्ता स्थापित होने के बाद यहाँ भी इतिहास लेखन को बड़ा प्रोत्साहन मिला। प्रारम्भिक तुर्क और खिलजी सुल्तानों के समय में यहाँ अनेकों इतिहासकार हुए जिन्होंने फारसी भाषा में अनेकों उत्कृष्ट ऐतिहासिक ग्रंथों की रचना की। मिनहाज उस सिराज (1260 ई.) ने तबकाते नासिरी नामक ग्रंथ की रचना की जो एक प्रकार से विश्व के विभिन्न मुस्लिम राजवंशों का इतिहास है। अपने इस ग्रंथ में उसने भारत के प्रारम्भिक तुर्की सुलतानों के साथ ही साथ विश्व के अन्य मुस्लिम राजवंशों का भी इतिहास लिखा है। जियाउद्दीन बरनी ने तारीखे फीरोजशाही नामक ग्रंथ की रचना की जिसमें उसने सुल्तान गयासुद्दीन बलबन से लेकर फीरोजशाह तुगलक के शासनकाल तक का दिल्ली सुल्तानो का इतिहास लिखा। भारत में अन्य प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासकार इजामी और शम्सेसिराज अफीफ हुए जिन्होंने क्रमश फुतुह-उस-सलातीन तथा तारीखे फीरोजशाही नामक ग्रंथों की रचना की।

6.12 अन्दलूसी और मगरिबी इतिहास लेखन:

अन्दलूस (स्पेन) में इस्लाम के प्रवेश के बाद वहां भी प्रचुर मात्रा में इतिहास लेखन का कार्य प्रारम्भ हुआ। अबूबक इब्न उमर (977 ई.) ने "तारीख इफ्तिताह अल अन्दलूस" नामक ग्रंथ की रचना की जिसमें उसने मुस्लिम विजय से लेकर अब्दुर्रहमान तृतीय तक के शासन का इतिहास लिखा। मुवह्हिद युग के सर्वाधिक प्रसिद्ध इतिहासकार अब्दुल वाहिद अल मर्राकुशि थे जिन्होंने 1224 ई. में "अलमुजीब फी तलखीस अखबार अल मगरीब" नामक ग्रंथ की रचना की। इस प्रदेश के अन्य लेखकी में अबुल वलीद अब्दुल्लाह और अबुल कासिम खलफ प्रमुख हैं जिन्होंने कम्रश: "तारीख उलमा अल अन्दलूस" और "अलसिलहफी तारीख एम्मत अल अन्दलूस" नामक ग्रंथों की रचना की। ये दोनों ग्रंथ जीवन चरित्र लेखन (ठपवहतंचील) के उत्कृष्ट नमूने हैं।

मगरिबी पश्चिमीद्ध इस्लाम का सर्वाधिक प्रसिद्ध इतिहासकार और दार्शनिक इब्न खल्दून (1332-1406 ई.) है जिसने अपनी कृति "किताब अल इबर" में मुस्लिम जगत् विशेषकर मगरिब (अल्लीरिया, ट्यूनिस और मोरक्को) का प्रामाणिक इतिहास लिखा और इस ग्रंथ की प्रस्तावना (मुकद्दमात) में इतिहास दर्शन की उच्चकोटि की व्याख्या प्रस्तुत की। इब्नखल्दून का जन्म 1322 ई में ट्यूनिस में हुआ था। उसने उत्तर पश्चिमी अफ्रीका की तथा कुछ हद तक मुस्लिम अधिकृत स्पेन एवं मिश्र के तत्कालीन राजनीतिक कार्य कलापों में बहुत भाग लिया था। फलस्वरूप वह इन प्रदेशों के समकालीन इतिहास से अच्छी तरह परिचित था तथा उसे इस्लाम के प्रभूत्व के अंतर्गत स्थित अन्य देशों को राजनीति का भी ज्ञान था। इब्नखलदून का काल बड़ा अशांत और अव्यवस्थित था। इसके अनुसार वह अधःपतन का युग था। मगरिब की स्थिति में एक भयंकर परिवर्तन हो रहा था। स्पेन की मुरित्तम संस्कृति पतन के करीब पहुंच गयी थी। इसाईयों की विजय बराबर बढ़ती जा रही थी। साम्राज्य और संस्कृति के उत्थान-पतन की इन घटनाओं का इब्नखल्दून के विचारों पर काफी प्रभाव पड़ा था। इन परिरिशतियों में इब्नखल्दुन ने संसार को एक नवीन इतिहास दर्शन और समाज विज्ञान प्रदान किया। उसने इतिहास की एक

विस्तृत और समाज शासनीय परिभाषा प्रस्तुत की। उसके अनुसार, "इतिहास मानव समाज का, विश्व संस्कृति का, सामाजिकता और सामूहिकता का, एक जाति का दूसरी के विरूद्ध क्रांति और विद्रोह का जिसके फलस्वरूप राज्यों और राष्ट्रों और उनके विभिन्न अंगों का प्रादुर्भाव होता है, मनुष्यों के विभिन्न कार्यों और व्यवसायों का चाहे वह जीविकोपार्जन के निमित्त हों अथवा विभिन्न कलाओं और विज्ञानों के लिए। और सामान्यत: इन सब परिवर्तनों का, जो स्वभावत: समाज के स्वरूप में प्रकट होते हैं, वृत्तांत हैं।"

इब्नखल्दून इतिहास को भी वैसी ही वैज्ञानिकता प्रदान की जैसी अन्य विद्याओं को प्राप्त हो चुकी थी। उसने समाजशास्त्र के भौतिक सिद्धांतों की खोज और प्रतिपादन किया। उसके मतानुसार समाज का स्वरूप और संस्थायें सामूहिकता (असाबिया) से पैदा होती है। इब्नखल्दून के मतानुसार समाज भी शरीर की तरह विकसित, प्रौढ़ और क्षीण हो कर अपना निश्चित जीवनकाल व्यतीत करते हैं। साम्राज्य का पतन उसी प्रकार होता है जैसे जीवित प्राणियों के शरीरों का क्षय होता है यह एक सामाजिक रोग है जिनका न कोई साधन है न उपाय क्योंकि यह एक ऐसी प्राकृतिक प्रक्रियां है जो निश्चित और अटल है। धीरे-धीरे सामूहिक चेतना असबियाद्ध जो समाज रूपी शरीर की जीवन शक्ति है, दुर्बल होती जाती हैं और इसका अंत हो जाता है। इस दृष्टि से इतिहास समाजों का जीवन विज्ञान है। इसका कार्य मृत समाजों के शवों का वर्गीकरण विश्लेषण और परीक्षण, अनके शारीरिक विधान के निर्माण और वृद्धि की प्रक्रिया की खोज और अनुसंधान और उनके विकास तथा विलय की प्रवृतियों और नियमों का निर्धारण हैं। इब्नखल्दून का समाज के बारे में यह अवयवी दृष्टिकोण और इतिहास की इस प्रकार जीव विज्ञान की तरह व्याख्या करना उसको आधुनिक बायोलोजिकल स्कूल के प्रोफेसर स्पैंगलर, हर्बट, स्पेन्सर, लिलिनफेल्द शाफ्लें और नोवीकोफ की श्रेणी में ले आते है।

इब्नखल्दून एक मौलिक विचारक थे। अससक्कीकी ने विचारों पर समसामयिक वातावरण के प्रभाव को स्वीकार किया था। अलमसूदी ने राज्य और धर्म के संबंधों पर पर्याप्त प्रकाश डाला था। अबतरतूशी और अलमावर्दी ने सामाजिक विकास पर कुछ विचार किया था। किंतु उक्त सभी लेखक या तो शरियत के आदर्श को साथ लेकर चलते थे या एक काल्पनिक चित्र सामने रखकर राज्य की समस्या पर विचार करते थे परंतु इब्नखल्दून पहला विचारक था जिसने समाज की सामाजिकता को लेकर अपना विचार सोपान तैयार किया।

6.13 इब्नखल्दून के बाद का इतिहास लेखन:

इब्नखल्दून के बाद मुस्लिम जगत् में किसी और लेखक ने इतिहास दर्शन पर इतनी गम्भीरता से विचार नहीं किया। किंतु इब्नखल्दून के बाद भी जिस तरह से मुस्लिम इतिहासकारों द्वारा अनेकों ऐतिहासिक ग्रंथों की रचना की गयी उससे यह सिद्ध होता है कि इब्नखल्दून के बाद भी मुस्लिम इतिहास लेखन की परंपरा जारी रही। इब्नखल्दून का कुछ प्रभाव हमको अल-मकरीजी की रचनाओं में दिखायी देता है। अल-मकरीजी (1364-1448 ई.) की प्रसिद्ध कृति "अल मवाइज बल इतिबार फी जिक्र अल खितात वल असार" है। इसके अतिरिक्त इसी युग में अबुल महासिन इब्न तग्री विर्दी (1411-69 ई.) ने "अल नुजूस अलजाहिरा फीमुलूक मिल वल काहिरा" नामक ग्रंथ की रचना की जिसमें उसने अरब विजय से १४५३ ई. तक का मिस्र का इतिहास प्रस्तुत किया है।

लगभग इसी समय जलालुदीन इब्लसुयूती (1445-1505 ई.) ने भी अपने ग्रंथ "हुस्न हल मुहाजराह फी अखबार मिस्र वल काहिरा" में मिस्र का इतिहास लिखा। किंतु ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हुए भी इन ग्रंथों' में अधिक मौलिकता नहीं हैं। वास्तव में इस युग की सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना शम्सुदीन अहमद कृत "वफायात अल वयान व अन्वा ए अब्मा अल जमान" है जिसमें उसने 865 प्रसिद्ध व्यक्तियों के जीवन चरित्र संग्रहीत किए हैं।

बाद में हुए मुस्लिम इतिहासकारों में अब्दुर्रहमान इब्नहसन अली जबर्ती का नाम उल्लेखनीय हैं। वे मिस्त्र के अल अजहर विश्व विद्यालय में ज्योतिष के प्रोफेसर थे और नैपोलियन बोनापार्ट ने उन्हें अपनी राज्य सभा का सदस्य नियुक्त किया था। अब्दुर्रहमान अल जबर्ती का प्रसिद्ध ग्रंथ "अजायब अल आसार फी अल ताराजिम वल अखबार" है जिसमें समकालीन मिस्त्र का बड़ा भव्य चित्र प्रस्तुत किया गया है। अल जबर्ती ने मिस्र पर नैपोलियन के आक्रमण का आँखों देखा वर्णन प्रस्तुत किया है। उसने अपने इस ग्रंथ में फिरंगियों की न्यायप्रियता और उनके विज्ञान प्रेम की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। इसी समय मिस्त्र के शासक मुहम्मद अली ने मिस्त्र में पश्चिमी ढंग की राष्ट्रीयता व्यवस्था कायम करके मिस्त्र को एक नया स्वरूप प्रदान किया था। इलजजबर्ती ने मुहम्मद अली के द्वारा किए गए नवीन सुधारों का विस्तृत विवरण लिखा है। यद्यपि अलजबर्ती ने अपने समय की यूरोप की एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटना-फ्रांस की क्रांति और नैपोलियन के द्वारा लड़े गए युद्धों का वर्णन नहीं किया है ओर इसकी रचना में केवल आस्टरलिट्ज के युद्ध का संकेत मान ही मिलता है, तथापि यह मानना पड़ेगा कि अलजबर्ती का ध्यान अन्य मुस्लिम इतिहासकारों की अपेक्षा यूरोप पर अधिक गया है। वह मुस्लिम जगत् पर पड़ने वाले पश्चिमी प्रभाव का उल्लेख करने वाले इतिहासकारों में अग्रणीय माना जाता है। वास्तव में इब्नखल्दून ने फिरंगियों की वैज्ञानिक प्रगति की तारीफ करके उनके भावी उन्नति का जो संकेत किया था उसे अलजबर्ती ने पूर्ण रूप से अव्यक्त किया था।

पश्चिमी प्रभाव के कारण मुस्लिम इतिहास लेखन की परम्पराये बदल रही हैं। परम्परा और रुढ़ि के स्थान पर अब इस्लामी इतिहास लेखन में आलोचना और अन्वेषण का महत्व बढ़ रहा।

6.14 अभ्यासार्थ प्रश्न:

1. इस्लाम के उदय के पूर्व अरब में इतिहास लेखन की परंपरा किस रूप में विद्यमान थी?
2. मुस्लिम इतिहास लेखन की प्रमुख पद्धतियों की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।
3. इस्लामी इतिहास लेखन के विकास में तबरी और मसूदी के योगदान का मूल्यांकन कीजिए।
4. इब्नखल्दून पश्चिमी इस्लाम का सबसे प्रसिद्ध इतिहासकार और दार्शनिक था विवेचना कीजिए।
5. इस्लामी इतिहास लेखन के क्रमिक विकास पर एक आलोचनात्मक लेख लिखिए।

6.15 संदर्भ ग्रंथ:

1. फ्रेंच रोजेन्थल, ए हिस्ट्री आफ मुस्लिम हिस्टोरियोग्रैफी, लीडेन 1952।
2. फिलिप के हिट्टी, हिस्टरी ऑफ दी अरब्स, लन्दन, 1937।
3. विल्फ्रेड कान्टवेल स्मिथ, इस्लाम इन माडर्न हिस्टरी, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1957।
4. मुहसिन माहदी, इब्नखल्दून फिलॉसफी ऑफ हिस्टरी, लंदन, 1957।
5. बुद्ध प्रकाश, इतिहास दर्शन, हिंदी समिति, सूचना दिमाग, उतर प्रदेश, लखनऊ, द्वितीय संस्करण, 1968।
6. डॉ. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, इतिहास: स्वरूप एवं सिद्धांत, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, द्वितीय संस्करण 1988।

इकाई - 7
इसाई धर्म एवं इतिहास - चिन्तन

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 ईसाई इतिहास-दर्शन की निर्धारक ईसाई -धार्मिक मान्यताएं
7.3 ईसाई इतिहास-चिन्तन
7.4 ईसाई इतिहास-दर्शन की प्रमुख अवधारणाऐं
7.5 ईसाई इतिहास-दर्शन का परवर्ती इतिहास-दर्शन पर प्रभाव
7.6 सारांश
7.7 बोध प्रश्न
7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

7.0 उद्देश्य:

इस इकाई में आप अध्ययन करेंगे -

1. ईसाई धर्म के उदय के पूर्व के यूनानी इतिहास - दर्शन व यहूदी पावन-परम्परा की पृष्ठभूमि।
2. वे प्रमुख ईसाई व यहूदी धार्मिक विचार जिनसे ईसाई इतिहास- चिन्तन प्रभावित हुआ।
3. ईसाई इतिहास-चिन्तन की रूपरेखा, और
4. ईसाई चिन्तन की वे अवधारणायें जो समय-समय पर इतिहास-चिन्तन को प्रभावित करती रही हैं।

7.1 प्रस्तावना

यूनानी दर्शन ने जगत् के ऐहिक रूप को उसका स्वरूप मानकर भी महत्व नहीं दिया कि वह इसमें घटित घटनाओं को स्वतंत्र विचार का विषय बनाता। उसने या तो इसे स्थितिहीन, स्वरूप- विहीन प्रवाह के रूप में देखा (हेराक्लाइटस) अथवा लोकोत्तर सत्ताओं का असम्यक् छायाभास (प्लेटो), अथवा असत् -प्रतीति (जेनो)। इसलिए यूनान ने कभी मानवीय जीवनक्रम को दार्शनिक विचार के विषय के रूप में नहीं देखा।

यूनान में पहला इतिहास-लेखक हेरोडोटस माना जाता है, जो ई. पू. छठी-पांचवी शताब्दी में हुआ। किन्तु इसका घटना-वर्णन इतिहास 'कहा जाने योग्य नहीं माना जाता, क्योंकि उसके विवरण में घटनाओं का न कोई व्यवस्थापक तत्व देखा गया है, न उनके उस प्रकार घटित होने, जिस प्रकार वे घटित हुई के कारणों को देखने का प्रयत्न किया गया है और न उनमें भविष्य-विषयक किसी दिशा-निर्देश के संकेत देखने का प्रयत्न है। हेरोडोटस के बाद चतुर्थ शती ई. पू. में थयूसीडिडीज़ ने "पोलेनेशिया युद्ध का इतिहास' लिखा। इसमें उसने इस युद्ध के घटित होने के कारणों की गवेषणा का प्रयत्न किया है और इस प्रकार उसमें पालेनेशिया का युद्ध असम्बद्ध घटनाओं का क्रम मात्र नहीं होकर एक अन्तर्नियोजित घटना-व्यवस्था हो जाता है। इसलिए

"पोलेनेशिया-युद्ध का इतिहास" के ही उपयुक्त रूप से यूनानियों की प्रथम इतिहास-कृति माना जाता है। थयूसीडेडीज़ की इतिहास के सम्बन्ध में मान्यता थी कि इसमें एक प्रकार की आवर्तनात्मकता रहती है, घटनाएं एक वृत्त बनाती हैं ओर ये वृत्त या चक्र बार-बार आवर्तित होते हैं। इस कारण हम अतीत के घटना-वृत्तों के कारणों को जानकर भावी वृत्तों को घटित होने से रोक सकते हैं अथवा उन वृत्तों के रूप बदल सकते हैं। "कारणों की खोज और मीमांसा" के इस सिद्धान्त ने हेसिओड के लेखन में "सभ्यताओं के जीवन-क्रम" के सिद्धान्त का रूप लिया, जिसके अनुसार समाज सभ्यताओं की उत्पत्ति, उत्कर्ष और क्षय के रूप में एक जीवन-यापन करते ओर समाप्त हो जाती है और तब नयी सभ्यताएं इसी प्रकार उत्पन्न होतीं, उत्कर्ष-लाभ करती है ओर क्षय-ग्रस्त हो जाती है। इसे "समाज में सभ्यताओं का युग-चक्र" सिद्धान्त कहा जाता है।

"इतिहास की आवर्तनात्मकता" के इस सिद्धान्त का बीजारोपण कुछ भिन्न रूप में संत अगस्तीन ने पांचवीं ई. श. में किया।

7.2 ईसाई इतिहास-दर्शन की निर्धारक ईसाई -धार्मिक मान्यताएं

यूनानी विचारधारा के विपरीत ईसाई-धर्म संसार को सत्य की छाया नहीं देखकर ईश्वर की रचना मानता है और इसलिए इसके घटनाचक्र को सत्य देखता है। ईसाई धर्म की यह एक प्रमुख मान्यता है कि ईश्वर अपनी सृष्टि में स्वयं को प्रकाशित करता है एवं मनुष्य इसी संसार में उस परम तत्व की प्राप्ति करता है। ये धार्मिक मान्यतायें ईसाईयो को यहूदी परंपरा से प्राप्त हुई। यह परंपरा ही ईसाई धर्म की स्रोत है।

यहूदी परम्परा के इतिहास का आरंभ यहूदी-ईश्वर याहवे व उसके चुनिंदा लोगों (यहूदियों) के बीच समझौते के साथ मानती है। यहूदी केवल ईश्वर व मनुष्य को ही महत्वपूर्ण मानते थे इसलिए उनकी मान्यता थी कि इतिहास इन्हीं के सम्बन्ध की कथा है। इस सम्बन्ध को वे नैतिकता पर आधारित मानते थे। उनका विश्वास था बेबीलोनियाईयों के हाथों उनकी पराजय व कष्ट ईश्वर को भुला देने व उसके आदेशों की अवज्ञा का परिणाम है। उनका यह भी विश्वास था कि निकट भविष्य में ईश्वर उनके इन कष्टों का निवारण कर उन्हें परम मुक्ति दिलायेगा। ईसाई धर्म का उदय इसी यहूदी धर्म से हुआ एवं उन्होंने ईसा के जन्म को यहूदियों की आशा के प्रतिफलन के रूप में प्रस्तुत किया।

ईसाई धर्म मानवीय कर्म में एक आधारभूत अतार्किकतता और आगन्तुकता देखता है, जो परिस्थिति या संदर्भ-जन्य न होकर अनिवार्यत: कर्म में ही अन्तर्निहित मानी गई है। इस कल्पना के अनुसार, मनुष्य अनजान होते हुए भी कि उसके कर्म का क्या फल होगा कर्म करने को अभिशप्त है एवं अपने निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त कर पाने की असमर्थता उसके स्वभाव का स्थायी तत्व है। संत अगस्तीन का कहना था कि मानव-कर्म बुद्धि द्वारा परिकल्पित उद्देश्यों की प्राप्ति की इच्छा से नहीं वरन् तात्कालिक अचेतन इच्छाओं से परिचालित होता है। इस विचार में यह अन्तर्निहित है कि मनुष्य की उपलब्धियां उसके पुरूषार्थ का परिणाम न होकर उस परम सत्ता के कारण होती हैं जो उसे दिव्य उद्देश्यों की ओर प्रेरित करती हैं। उसके कर्मों में प्रज्ञा उसकी स्वयं की नहीं बल्कि ईश्वर की अनुकम्पा की परिणाम होती है। इस प्रकार जिन

योजनाओं को मनुष्य फलित करता है वे उसकी बुद्धि की रचना नहीं होती वरन् वह तो अपने तात्कालिक आवेगों से परिचालित होकर कर्म करते हुए ईश्वरीय उद्देश्यों को क्रियान्वित करता है।

ईसाई धर्म केवल ईश्वर को नित्य सत्ता मानता है। अन्य सब कुछ यह जगत् मनुष्य, समाज, राज्य आदि-नश्वर एवं ईश्वर-रचित हैं। वह अपनी रचना के स्वभाव को नई दिशा दे सकता है और नवीन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु उसे बदल सकता है। इस प्रकार व्यक्तियों और समाजों का आध्यात्मिक या भौतिक उत्थान-पतन उसकी योजनाओं का ही निदर्शन होता है।

7.3 ईसाई इतिहास-चिन्तन

उपर्युक्त विचारों के प्रभाव से एक नवीन दर्शन का उदय हुआ। संत अगस्तीन इस इतिहास-दर्शन का पहला वास्तविक विचारक था। पांचवीं शती ई. में बर्बर जर्मन जातियों के आक्रमणों से रोम का पराभव हो गया। इस समय तक ईसाई धर्म रोम के राज्य धर्म के रूप में समर्पित हो चुका था। इसके विरोधियों ने रोम के वैभव के विनाश का कारण ईसाई धर्म को बताया। अगस्तीन ने इस आक्षेप का उत्तर अपनी पुस्तक "सिटी आव गॉड" के माध्यम से दिया। उसने कहा कि इतिहास, "मनुष्य के नगर" व "ईश्वरीय नगर" के मध्य का अंतराल है। संसार में रोम जैसे राज्य व सभ्यतायें मनुष्य के नगर हैं व चर्च ईश्वर के नगर का प्रतिनिधि, जहां एक ओर "मनुष्य का नगर" मानवीय संवेगों, वासनाओं व अन्य बुराईयों का क्षेत्र व निरन्तर, क्षयमान अस्तित्व है, वहीं इसमें "चर्च" मनुष्य को निरन्तर मुक्ति के मार्ग की ओर ले जाता है एवं यही इतिहास का शाश्वत पक्ष है। अत: रोम का पराभव मानवता के "ईश्वरीय नगर" की ओर विकास को प्रभावित नहीं करता। अगस्तीन ने इतिहास की परिकल्पना मानवीय उद्देश्यों, योजनाओं, और चेष्टाओं के संदर्भ में न करके एक दिव्य-योजना के फलन के माध्यम के रूप में की। उसके अनुसार ईश्वर सम्पूर्ण मानव-जाति के इतिहास क पूर्व-निर्धारक है और विभिन्न देशों तथा सभ्यताओं के इतिहास विभिन्न स्वतन्त्र इतिहास नहीं होकर एक ही वैश्व इतिहास का अंग है। यद्यपि मनुष्य अपने लक्ष्य के प्रति एवं अपने कर्मों के प्रति चेतन होता है, वह जानता है कि वह क्या कर रहा है, किन्तु वह जो कुछ करता है वह सब क्यों करता है अथवा जो उसका लक्ष्य है वह क्यों है, यह वह नहीं जानता। इसका कारण यह है कि मनुष्य अपना नियंता स्वयं नहीं बल्कि ईश्वर है, मनुष्य तो मात्र उसकी दिव्य योजना को क्रियान्वित करने वाला है। इस प्रकार यद्यपि मनुष्य कर्त्ता है, किन्तु केवल प्रकट रूप से ही, क्योंकि वास्तविक कर्ता तो ईश्वर है। वह मनुष्य की अचेतन इच्छाओं व संवेगों को अपनी दिव्य योजनाओं का उपकरण बनाता है। इस प्रकार प्रत्येक युग व उसके घटनाचक्र की मूल्यवत्ता इसमें है कि उससे किस सीमा तक दिव्य योजना का क्रियान्वयन होता है। इस जगत् का घटनाचक्र काल-निर्धारित, अनित्य एवं अद्वितीय होता है जगत् का प्रत्येक सत्व अपनी भूमिका निभाकर समाप्त हो जाता है। उसका जन्म होता है, वह विकसित और प्रवर्धित होता है और दिव्य योजनानुसार अपनी भूमिका पूर्ण कर विलीन हो जाता है। इतिहास पटल पर उभरने वाली जातियों, सभ्यताओं व संस्कृतियों का यही चक्र रहा है। वे सब दिव्य योजना के कारण उत्पन्न हुईं एवं उसके फलित होने से अपना योगदान करके समाप्त हो गई। यहां यह द्रष्टव्य है कि ईसाई-चिन्तन में यूनानी चिन्तन के कालचक्र अथवा युग-चक्र के सिद्धांत को एक नये ढंग से

व्याख्यायित कर एक नया अर्थ प्रदान किया गया। उत्थान व पतन के चक्र की अनवरत आवृत्ति के स्थान पर अब माना गया उत्थान व पतन का प्रत्येक चक्र अद्‌वितीय है। कोई चक्र घटित हो जाने के बाद पुन: स्वयं को नहीं दोहराता। विश्व में प्रत्येक व्यक्ति, जाति संस्था और सभ्यता के काल चक्र दिव्य योजना के फलित होने के विभिन्न चरण होते हैं।

ईसाई इतिहास-दर्शन का एक महत्वपूर्ण तत्व है- सार्वभौमिकता। यहूदी-परम्परा के विपरीत ईसाई धर्म में मानव मात्र को ईश्वर के समक्ष बराबर माना गया है। यद्‌यपि यहूदियों का ईश्वर सारी मानव-जाति का ईश्वर था, किन्तु यहूदी उसकी चुनिंदा संतान थे। ईसाई-धर्म में चुनिन्दा संतान के इस सिद्धांत को त्याग दिया गया। इस प्रकार सम्पूर्ण मानव-जाति का इतिहास ईसाई दार्शनिकों के लिये महत्वपूर्ण हो गया।

7.4 ईसाई इतिहास-दर्शन की प्रमुख अवधारणायें

सार्वभौमिकता, ईश्वरीय योजना, इल्हाम या भविष्य दृष्टि एवं युग-सिद्धांत। जैसी कि हमने ऊपर चर्चा की, ईसाई इतिहास-चिन्तन का विषय कोई जाति विशेष अथवा स्थान विशेष नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानवता है जिसका आरम्भ ईसाई स्वर्ग से आदम के पतन से मानते हैं। इस प्रकार अब पहली बार इतिहास सही अर्थों में सार्वभौमिक बना।

ईसाई-दर्शन में सम्पूर्ण मानव-इतिहास ईश्वरीय योजना के फलित होने के कम के रूप में देखा गया है। दिव्य योजना ऐतिहासिक घटना-प्रवाह को पूर्व निर्धारित करती है। इस योजना में कोई भी परिवर्तन मनुष्य की इच्छा, प्रार्थना अथवा पौरूष से सम्भव नहीं है। दिव्य योजना अपने उद्देश्य- "ईश्वरीय नगर" की स्थाना की प्राप्ति-हेतु इतिहास के माध्यम से अग्रसर रहती है। इस योजना के लक्ष्य-'ईश्वरीय नगर"-की भविष्योद्‌घोषणा ईसा के ही जन्म के माध्यम से हुई है। ईसा को जन्म देकर ईश्वर ने अपनी योजना को मनुष्य मात्र से समक्ष उद्‌घाटित किया है। ईसाईयों ने ईसा के जन्म की घटना को केन्द्र मानकर इतिहास को दो भागों में विभक्त किया है, ईसा के जन्म के पूर्व का और उसके जन्म के बाद का इतिहास। ईसा के जन्म के पूर्व की घटनाओं का लक्ष्य ईसा का जन्म था और परवर्ती घटनाओं का लक्ष्य "ईश्वरीय नगर" की स्थापना है।

संत अगस्तीन को इतिहास का विभाजन दो मुख्य भागों में कर देने के उपरान्त इसे अनेक युगों में बांटा। उसने युग-निर्धारण युगों के विशिष्ट लक्षणों के आधार पर किया। इतिहास के युगों में विभाजन को वह जैव जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के रूपक (शैशव, यौवन और वार्द्धक्य) के द्‌वारा करता है। उसके अनुसार प्रथम युग आदम से नोआ के काल तक है-जब मानव अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने तक सीमित था। द्‌वितीय युग नोआ से अब्राहम तक का है- इस युग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि विविध भाषाओं का विकास है। इस युग में सर्वप्रथम लिखित स्मृति के माध्यम से अतीत के संग्रह के महत्व को पहचाना गया। इसी युग में जल-प्लावन की घटना घटित हुई। इन दोनों युगों को अगस्तीन मानवता की युवावस्था कहता है। इसके बाद के तीन युग मानव की प्रौढ़ावस्था के युग हैं। ये युग अब्राहम से आरंभ होकर ईसा के अवतरण तक के हैं। तीसरा युग अब्राहम से मोजेज के काल तक चलता है। यह "ओल्ड टेस्टामेंट" का युग है। मोजेज से लेकर जरूसलम में सोलोमन द्‌वारा "मन्दिर-निर्माण" की घटना तक का काल चौथा युग माना गया है। पांचवां युग बेबीलोन के हाथों

यहूदियों की पराजय व दासता का युग है। छठा साइरस से जीसस तक व सातवां जिस के जन्म से लेकर मानवता के अंत तक का युग है। प्रत्येक युग में मानवता के ज्ञान में कुछ न कुछ विशिष्ट अभिवृद्धि होती रही है। इसे अगस्तीन ने "मानवता की शिक्षा" कहा है। ईसा के जन्म के बाद आरम्भ होने वाला युग मानवता की वृद्धावस्था का युग है। यह भी उसी प्रकार व्यतीत हो जायेगा, जिस प्रकार पिछले युग बीते हैं। इस तरह पृथ्वी पर मानवता के अस्तित्व का चक्र पूर्ण हो जायेगा, जिसकी परिणति कयामत के दिन में होगी। तब ईश्वर सांसारिक अस्तित्व के अच्छे व बुरे कर्मों के अनुसार उनके लिये सदा के लिए स्वर्ग अथवा नर्क की व्यवस्था करेगा।

यहां यह द्रष्टव्य है कि मानव-इतिहास एक दिव्य योजनानुसार एक विशिष्ट लक्ष्य की ओर अग्रसर है। इस प्रकार मानव-इतिहास की गति चक्रात्मक न होकर रेखीय विकास की है। यद्यपि संसार में मानव-इतिहास निरन्तर क्षय की ओर अग्रसर है, किन्तु इसका अन्तिम लक्ष्य है ईश्वर का नगर, जिसका आविर्भाव सांसारिक अस्तित्व के चक्र की समाप्ति के पश्चात् होगा। यह चक्र अस्तित्व का बृहता चक्र है, जो एकमात्र व अद्वितीय है, इसकी समाप्ति के बाद ऐसे किसी चक्र की पृथ्वी पर पुनरावृत्ति नहीं होगी। ऐतिहासिक घटनाओं की अद्वितीयता के इस विचार में परवर्ती काल के "इतिहासवाद" की झलक देखी जा सकती है।

मानव-इतिहास में उत्पत्ति व विनाश के काल-चक्र की अनन्त पुनरावृत्ति के यूनानी विचार के खण्डन के पीछे ईसा के जन्म, उसके द्वारा मानवता के लिये भोगी गई पीड़ा की परम मूल्यवत्ता में विश्वास था। साथ ही आदम के पतन, ईसा के जन्म व उद्धार के चक्र की पुनरावृत्ति का विचार अगस्तीन को कभी उपयुक्त प्रतीत नहीं हुआ। ईसाई धर्म का संसार की उत्पत्ति का सिद्धांत भी मानव-अस्तित्व के काल-चक्र की बार-बार पुनरावृत्ति को अर्थहीन कर देता है। उसके अनुसार संसार ईश्वर द्वारा सृजित तात्विक सत्ता है। बार-बार ईश्वर द्वारा इसे उत्पन्न करना, फिर मिटा देना, उसके सृजन को अर्थहीन कर देगा। उसके अतिरिक्त ईसाई धर्म यहूदी परम्परा से निकला है। यह ईश्वर प्रदत्त पवित्र इतिहास की परम्परा है, जिसमें यहूदियों पर ईश्वर की नेमतों का विवरण है। यहूदी धर्म-ग्रंथ में यहूदियों पर ईश-कृपा, ईशोपदेश व निर्देश, जो समय-समय पर उन्हें प्राप्त हुए, संरक्षित हैं। यहूदियों के ईश्वर-प्रदत्त इतिहास के विचार एवं यूनानियों के काल-चक्र की अनवरत पुनरावृत्ति के सिद्धांत परस्पर विरूद्ध हैं। इस कारण ईसाई दार्शनिकों ने एक बृहत् इतिहास-चक्र की कल्पना की। और साथ ही इस चक्र के अन्तर्गत विशिष्ट जातियों व सभ्यताओं के जीवन-चक्र की कल्पना भी की। अगस्तीन का विश्वास था कि उत्थान व पतन का यह बृहत् चक्र एक दुर्निवार ईश्वरी योजना का फलीकरण है, जिस योजना का बीज आदम के पतन के समय बो दिया गया था। जिस प्रकार एक पेड़ की समस्त सम्भावनायें उसके बीज में होती है उसी प्रकार मानवता की संपूर्ण सम्भावनायें, उसके सद्गुण-दुर्गुण, शक्तियां-क्षीणतायें सब कुछ ईश्वर ने आदि पुत्र आदम में संग्रहीत कर दी थीं। उसके बाद समस्त इतिहास इन्हीं सम्भावनाओं का फलीकरण है। उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि ईसाई दार्शनिक इतिहास की गति में एक अनिवार्यता मानते हैं। यह अनिवार्यता दिव्य-योजना के तर्क की है, जो मानवीय कृत्यों का अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु उपयोग करती है।

ईसाई परम्परा सम्पूर्ण मानवता की एकता की कल्पना है- जिसके भीतर मिश्री, यहूदी, यूनानी, रोमी आदि जातियों के जीवन-वृत घटित होते हैं। इस विशाल अस्तित्व: मानवता के इतिहास: में विभिन्न अवस्थाओं का अनिवार्य कम घटित होता है। यहां यह द्रष्टव्य है कि यह कम उन प्राकृतिक अवस्थाओं का कम मात्र नहीं है, जिससे होकर कोई भी सत्ता गुजरती है, बल्कि इन अवस्थाओं के अंतर्गत होने वाली प्रत्येक घटना, प्रत्येक मानवीय कृत्य, इन कृत्यों के पीछे प्रयोजन तथा सब कुछ जैसे घटित हुआ और होगा, वह सब पूर्व निर्धारित ही है।

संत अगस्टीन ने हीबू परम्परा के दैवीय अनुबन्ध में संभवत (बिमिंगनेरू) के यूनानी विचार को जोड़कर ऐतिहासिक अनिवार्यता के विचार का प्रतिपादित किया। यहूदी-परम्परा में ईश्वरीय आदेश के माध्यम से इतिहास में गति की कल्पना तो है, किन्तु इतिहास में किसी योजना की कल्पना नहीं है- ऐसी योजना जिसका पूर्व-निर्धारण ईश्वर ने आरम्भ में ही कर दिया था। यूनानी-चिन्तन के सत्ता की अंतर्निहित संरचना के विचार के साथ यहूदी ऐतिहासिक अद्‌वितीयता के विचार के संयोग से पाश्चात्य चिन्तन के ऐतिहासिक अनिवार्यता के सिद्धांत का आरम्भ हुआ। ऐतिहासिक अनिवार्यता के इस सिद्धांत के अन्तर्गत अगस्तीन ने संपूर्ण ऐतिहासिक घटनाक्रम को निश्चित युगों में विभक्त करके दिखाने का प्रयत्न किया कि यह बस एक पूर्व-निर्धारित योजना का परिणमन है, जिस योजना का निर्धारण ईश्वर ने पृथ्वी पर मानव के अवतरण के पूर्व ही कर दिया था।

मानव-इतिहास की इस व्याख्या से इतिहास में "भाग्य" अथवा "आगन्तुकता" का स्थान हो गया। समस्त घटना-व्यापार पूर्व-नियोजित योजना के अनुसार होने से प्रत्येक मानवीय कृत्य विशिष्ट व महत्वपूर्ण है क्योंकि वह दिव्य योजना के फलित होने का माध्यम है। अत: "आगन्तुक" कुछ नहीं होता, वह तो हमें उसके कारणों व कारकों को न देख पाने के कारण प्रतीत होता है।

संत अगस्तीन के बाद मध्यकालीन ईसाई चिन्तन की सामान्य रूप- रेखा वही रही जो अगस्तीन ने निर्धारित की थी। मध्ययुगीन ईसाई दार्शनिक भी इतिहास में ईश्वरीय योजना के क्रियान्वयन को दिखाने में ही प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। उनके अनुसार ईश्वरीय योजना काल की गति के साथ विभिन्न चरणों से गुजरती हुई फलित होती चलती है एवं प्रत्येक चरण का आरम्भ एक युगान्तकारी घटना से होता है। 12वीं शती ई० में फ्लोरिस के जोयकिम ने इतिहास को तीन युग में विभक्त किया- पिता का राज्य काल अथवा अनवतरित ईश्वर का युग-अर्थात् ईसा के जन्म के पूर्व का युग, पुत्र का राज्यकाल अथवा ईश्वर-पुत्र ईसा अथवा "पवित्र आत्मा का राज्य काल" जिसका आरम्भ भविष्य में होगा। मध्ययुगीन ईसाई दार्शनिक व इतिहास-लेखक भविष्योन्मुखी थे। अगस्तीन की ही तरह उनकी इतिहास में रूचि मात्र अतीत के अध्ययन की दृष्टि से ही नहीं थी, बल्कि उन्होंने समस्त इतिहास-अतीत, वर्तमान एवं भविष्य-को एक समुच्चय के रूप में देखा था। उनके लिए ऐतिहासिक घटनाओं का प्रकाश और उन्हें अर्थ प्रदान करने वाला तत्व वह उद्देश्य है जिसकी सिद्धि ये घटनायें करती हैं। यह उद्देश्य "ईश्वरीय नगर" की स्थापना है। ईश्वरीय योजना मनुष्य की व्यक्तिगत इच्छाओं व कृत्यों के बावजूद फलित होती है। इस प्रकार मानवीय इच्छाओं व कृत्यों की मूल्यवत्ता उसी सीमा तक होती है, जिस

सीमा तक कि वे ईश्वरीय योजना के फलिती होने में सहायक होते है। मध्य-युगीन ईसाई चिन्तन में ईश्वर की कल्पना एक तत्व के रूप में नहीं बल्कि शुद्ध कर्म (प्योर ऐक्ट) के रूप में की गई है एवं माना गया है कि दैवीय क्रियाशीलता मानव-कर्म का आंतरिक रूप से नहीं बल्कि बाहर से निर्धारण करती है। इस प्रकार ईश्वरीय योजना की अंतर्भूतता के सिद्धांत का स्थान अब लोकातीतता (ट्रांसेंडेस) के सिद्धांत ने ले लिया।

ऊपर 'हमने देखा कि ईसाई इतिहास-दर्शन किस प्रकार ईसाई धार्मिक सिद्धांतों- यहूदी परम्परा व यूनानी चिन्तन से प्रभावित हुआ एवं इसकी प्रमुख अवधारणाएं कौन-कौन सी हैं? एक बार पुन: ये प्रमुख अवधारणायें हैं- सार्वभौमिकता, "ईश्वरीय विधान" अथवा "प्रावीडेन्स", इतिहास की रेखीय गतिकता, सम्पूर्ण इतिहास का युगों में विभाजन एवं ऐतिहासिक अनिवार्यता।

7.5 ईसाई इतिहास-दर्शन का परवर्ती इतिहास-दर्शन पर प्रभाव:

उपरोक्त अवधारणाओं के प्रवेश से इतिहास-चिन्तन बहुत समृद्ध हुआ। किन्तु ईश्वरीय विधान एवं ऐतिहासिक अनिवार्यता के सिद्धांतों ने मानवीय कृत्यों को इतिहास-अध्ययन की दृष्टि से अर्थहीन कर दिया। ईश्वरीय विधान के समक्ष पुरूषार्थ के लिये कोई स्थान नहीं है। ईसाई इतिहास-दार्शनिक ऐतिहासिक घटना-क्रम में ईश्वरीय योजना को खोजने व भविष्योद्घाटन करने की चिन्ता से मानवीय कृत्यों और मन्तव्यों की ओर कोई ध्यान नहीं देते। न ही वे यह देखने का प्रयत्न करते हैं कि जिन तथ्यों का वे प्रयोग कर रहे हैं वे कहां तक विश्वसनीय हैं एवं जो कुछ उन्होंने परम्परा से जाना है क्या वह वास्तव में वैसा ही घटित हुआ था? इससे यह स्पष्ट है कि ईसाई लेखन आलोचनात्मक पद्धति की दृष्टि से बहुत कमजोर था।

पुनर्जागरण-काल के आरम्भ के साथ धर्म व इतिहास के बीच संयोजन समाप्त हो गया। अब इतिहास मानवीय कृत्यों, मन्तव्यों, अपेक्षाओं, चिन्ताओं आदि का विवरण बन गया। किन्तु ईसाई इतिहास-दर्शन की अनेक महत्वपूर्ण अवधारणायें हैं जैसे- सार्वभौमिकता, इतिहास की रेखीय गतिकता, युग-चक्र, ऐतिहासिक अनिवार्यता, ऐतिहासिक घटनाओं की अद्वितीयता आदि- परवर्ती इतिहास- दर्शन में स्पष्ट देखने को मिलती' हैं। एक अन्य अवधारणा कि ऐतिहासिक घटनाएं अपने आप में अर्थहीन हैं, किन्तु दिव्य तत्व के प्रकाशक के रूप में अर्थवान् हैं, इतिहास-चिन्तन को एक अति-महत्वपूर्ण देन है। इसके अनुसार इतिहासकार का उद्देश्य मात्र तथ्यों का संकलन नहीं बल्कि उनकी व्याख्या है।

इतिहास की सार्वभौमिकता की अवधारणा पुनर्जागरण काल में होती हुई समकालीन इतिहासकारों तक चलती आई है। यद्यपि बीच-बीच में हर्डर और हेगेल जैसे विचारकों ने इतिहास के गुरूत्वाकर्षण का केन्द्र यूरोप को माना एवं अन्य सभ्यताओं व संस्कृतियों को गौण, किन्तु अन्य सभ्यताओं को इतिहास-वृत्त में सम्मिलित अवश्य किया।

इतिहास की रेखीय गतिकता अथवा विकास की अवधारणा यद्यपि बीसवीं शती से अधिकांश इतिहासकारों द्वारा त्याग दी गई, किन्तु यहूदी परम्परा से लेकर 19वीं शती के उत्तरार्द्ध तक वाल्टेयर, विको, कांट और हेगेल जैसे दार्शनिकों ने इतिहास को निरन्तर विकासमान् प्रवाह के रूप में ही देखा।

युग-चक्र की यूनानी अवधारणा, जिसका प्रयोग अगस्तीन ने विलक्षण ढंग से किया था, विभिन्न रूपों में परवर्ती इतिहास-चिन्तकों में दिखाई पड़ती है। इतिहास-दर्शन की यह अवधारणा किसी भी काल में पूर्णतया अस्वीकृत नहीं हुई। 12वीं शती में फ्तोरिस के जोयाकिम के बाद 17वीं शती में इस सिद्धांत पर पुन: विचार आरम्भ हुआ। इस शती में बोसुए से लेकर हर्डर व विको से होते हुए 20वीं शती में स्पेंगलर, टॉयन्बी व सोरोकिन तक यह अवधारणा निरन्तर दिखाई पड़ती है।

इतिहास के अतिमानवीय स्वरूप की परिकल्पना का एक अपरिहार्य परिणाम है ऐतिहासिक अनिवार्यता की अवधारणा, जब इतिहास का अध्ययन सभ्यताओं जैसे अतिमानवीय वृहत् अस्तित्वों के स्तर पर किया जाता है, तब इतिहास के प्रवाह में एक दुर्निवारता दिखाई पड़ती है एवं मानव-सृष्टि एक अतिमानवीय सत्ता का उपकरण मात्र हो जाती है। इतिहास का अतिमानवीय सत्ताओं (सभ्यताओं आदि) के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन पुनर्जागरण काल के बाद पुन: आरम्भ हुआ एवं ऐतिहासिक अनिवार्यता का प्राचीन तत्व इतिहास दार्शनिकों की ऐतिहासिक की अवधारणा में पुन: दिखाई पड़ने लगा।

7.6 सारांश:

इस इकाई में हमने अध्ययन किया कि ईसाई इतिहास-दर्शन यूनानी इतिहास-दर्शन की पृष्ठभूमि में व यहूदी धर्म-परम्परा से उत्पन्न हुआ था। ईश्वर की परम तत्व के रूप में कल्पना 'जगत् का उसकी वास्तविक रचना होना, ईश्वर द्वारा स्वयं को प्रकाशित करने की अवधारणा और जगत् तथा उसके घटनाचक्र को यूनानी मत के विपरीत ज्ञान की एक महत्वपूर्ण विधा के रूप में देखना, इन धारणाओं में इतिहास को ईश्वरीय योजना के क्रियान्वयन के माध्यम के रूप में परिकल्पित किया गया। ईसाई इतिहास-चिन्तन की विभिन्न मान्यताओं का निर्धारक व उन्हें सुस्पष्ट अभिव्यक्ति देने वाला प्रथम दार्शनिक संत अगस्तीन था। इसकी प्रमुख अवधारणायें - सार्वभौमिक इतिहास, "ईश्वरीय योजना" का इतिहास में क्रियान्वयन। अतएव इतिहास का उद्देश्यतात्मकता, इतिहास की रेखीयता व इतिहास के घटनाक्रम में अनिवार्यता आदि हैं। मध्य-युग के बाद अधिकांश इतिहास-दर्शनों में ईश्वरीय अथवा दिव्य तत्व की कल्पना को त्याग दिया गया, किन्तु ईसाई इतिहास-दर्शन की अन्य सभी अवधारणायें परवर्ती इतिहास-दर्शन को निरन्तर प्रभावित करती रहीं।

7.7 बोध प्रश्न

1. यूनानी इतिहास-दर्शन के युग-चक्र के सिद्धान्त को किस रूप में ईसाई चिन्तन में स्थान मिला?
2. ईसाई इतिहास-दर्शन को किस अर्थ में यूनानी युग-चक्रवाद व यहूदी परम्परा के पावनतापरक इतिहास का समन्वय कहा जा सकता है?
3. ईसाई धर्म में ईश्वर का क्या स्वरूप है एवं मानव-इतिहास में उसकी क्या भूमिका है?
4. ईसाई इतिहास-दर्शन की प्रमुख अवधारणायें कौन-कौन सी हैं?
5. मध्य-युग की समाप्ति के उपरान्त ईसाई इतिहास-चिन्तन की किन अवधारणाओं को परवर्ती इतिहास-दार्शनिकों के चिन्तन में देखा जा सकता है?

7.8 सन्दर्भ ग्रंथ

1. कालिंगवुड, आर. जी. — आइडिया ऑव हिस्ट्री, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, आक्सफोर्ड
2. निस्बेत, आर.ए. — सोश्यल चेंज एण्ड हिस्ट्री, हैनीमान, लंदन
3. पांडे गोविन्द चन्द्र — इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धांत राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर
4. मर्रे एम. — माडर्न फिलोसोफी ऑफ हिस्ट्री: इस्ट्स ऑरिजिन एण्ड डेस्टीनेशन, मार्टीनस, निजहॉफ / द हेग
5. विजरी, एल्बान जी. — इन्टरप्रिटेशन ऑफ हिस्ट्री, जोर्ज एलन एण्ड अनविन, लंदन

इकाई - 8

रॉके के विशेष संदर्भ में इतिहास दर्शन की निश्चयात्मक अभिगम

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 19वीं शताब्दी में इतिहास दर्शन विषयक विभिन्न विचार

8.3 रॉके का जीवन परिचय

8.4 निश्चयात्मक अभिगम की परिभाषा तथा स्वरूप

8.5 निश्चयात्मक अभिगम का परवर्ती विचारधारा पर प्रभाव

8.6 निश्चयात्मक अभिगम पर रॉके का प्रभाव

8.7 उपसंहार

8.8 बोध प्रश्न

8.9 संदर्भ ग्रंथ

8.0 उद्देश्य

1. यूरोप में 19वीं शताब्दी में प्रचलित इतिहास - दर्शन विषयक विभिन्न मान्यताएं
2. रॉके का कार्य परिचय तथा उसके योगदान का अध्ययन
3. निश्चयात्मक अभिगम की परिभाषा तथा उसका स्वरूप
4. निश्चयात्मक अभिगम का आलोचनात्मक अध्ययन तथा उसका परवर्ती
5. इतिहासकारों पर प्रभाव

8.1 प्रस्तावना

वास्तव में "इतिहास-दर्शन" नाम का सर्वप्रथम प्रयोग वाल्तेअर ने किया था तथा परिवर्तीकाल में हीगल आदि विद्वानों ने भी इतिहास दर्शन शब्द का प्रयोग किया। उन्नीसवीं शताब्दी का काल वह समय था जब उसकी पूर्ववर्तिनी सदियों के रचनात्मक तत्वों के सम्मिश्रण से आधुनिक इतिहास लेखन का बौद्धिक प्रारूप प्रकट हुआ तथा मानव के सम्पूर्ण भूत को वर्णनार्थ इतिहास में शास्त्रीय ग्रंथ रचे गए थे। इतिहास के प्रति इस वास्तविक संवेदनशीलता को प्रोत्साहित करने का श्रेय फ़्रांसीसी राज्य क्रांति को जाता है। लेकिन इस ऐतिहासिक चिन्तन परम्परा की ओर जर्मन विद्वान अधिक अभिमुख हुए। इसका कारण संभवत : जर्मनी में राजनैतिक एकता की कमी थी, जिसके फलस्वरूप जर्मनी के चिन्तकों ने सांस्कृतिक एकता के महत्व को प्रतिष्ठापित करने के लिए ऐतिहासिक चेतना को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। इसके अतिरिक्त 19वीं शताब्दी में जर्मनी के विश्वविद्यालय नए प्रयोग करने के कारण बौद्धिक विचार विमर्श के प्रधान केन्द्र हो गए थे जिस कारण जर्मनी के गोटिंगेन तथा बर्लिन विश्वविद्यालय इतिहास के अध्ययन के प्रमुख केन्द्र बन सके थे। इतिहास

के विद्वानों की इस धारा को नेबूर, बारथोल्ड ने आगे बढ़ाया। इसी नेबूर का उत्तराधिकारी लियोयाल्ड फॉन रॉके हुआ, जिसे सभी कालों के इतिहासविदों में सर्वाधिक प्रभावशाली समझा जाता है। इस इकाई में इतिहास लेखन में रॉके के विचारों के परिप्रेक्ष्य में निश्चयात्मक अभिगम का विवरण प्रस्तुत किया जाएगा।

8.2 19वीं शताब्दी में इतिहास दर्शन विषयक विभिन्न विचार

19वीं शताब्दी यूरोप में चिन्तन के क्षेत्र में अनेकानेक परिवर्तन हुए। यह वह शताब्दी थी जब विभिन्न सामाजिक विज्ञानों का गठन हुआ था। इस चिंतन परम्परा में इतिहास दर्शन की दृष्टि से डिल्थे ने यह विचार व्यक्त कर, "मनुष्य मूलत: ऐतिहासिक जीव है और इतिहास द्वारा ही मनुष्य को समझने का सूत्र प्राप्त होता है, "इतिहास को एक स्वतन्त्र रूप में प्रतिपादित किया। जैसा कि पूर्व में वर्णित किया जा चुका है कि वोल्तेअर ऐसा प्रथम व्यक्ति था जिसने इतिहास दर्शन शब्द को प्रयुक्त किया था। वोल्तेअर का इतिहास दर्शन से तात्पर्य आलोचनात्मक अथवा वैज्ञानिक इतिहास से था। वोल्तेअर के 19वीं शताब्दी के इस विचार को 10वीं शताब्दी में हीगल ने आगे बढ़ाया। हीगल ने इतिहास को अधिकाधिक तथ्यों की जानकारी प्राप्त कर लेने के विचार से आगे बढ़ाकर इतिहास को नया आयाम दिया तथा यह विचार व्यक्त किया कि इतिहास के द्वारा यह समझा जा सकता है कि तथ्य क्यों घटित होते हैं। हीगल ने इतिहास के मानव जाति के सार्वभौमिक स्वरूप को प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया।

हीगल की इतिहास - दर्शन को मुख्य देन विवेक की प्रतिष्ठा करना है। हीगल के अनुसार इतिहास के ऊपर चिन्तन में प्रवृत दार्शनिक का प्रमुख कर्त्तव्य अतीतकाल में घटित घटनाओं में निहित "विवेकपूर्णता" को ढूँढना है, विवेक ही विश्व का सार्वभौम शासक है और इस कारण विश्व हमारे सामने एक विवेकपूर्ण प्रक्रिया प्रस्तुत करता है। हीगल की विचारधारा को आगे चल कर कार्लमार्क्स ने आगे बढ़ाया। जहाँ हीगल इतिहास का प्रारूप दर्शन में पाता है तो मार्क्स उसकी कुंजी आर्थिक परिवर्तनों में ढूंढता है। मार्क्स का सर्वाधिक योगदान उसके द्वारा प्रारम्भ किया गया इतिहास का आर्थिक अध्ययन है। मार्क्सीय विचारधारा के परिणामस्वरूप ही आर्थिक इतिहास के अध्ययन में उल्लेखनीय प्रगति हुई। मार्क्स की इस विचारधारा के परिणामस्वरूप ही आर्थिक इतिहास के सम्बन्ध में नवीन सैद्धान्तिक विचार विकसित हुए। मार्क्स की इतिहास को प्रमुख देन संस्थात्मक परिवर्तनों के सामाजिक संदर्भ में अध्ययन की द्वन्द्वात्मक पद्वति को स्थापित करना है।

8.3 रॉके का जीवन और चिन्तन परिचय:

19वीं शताब्दी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विचारक रॉके लियोपाल्ड था। अधिकांश विद्वान लिथोपालड राम्के को 19वीं शताब्दी का सर्वाधिक प्रभावशाली इतिहास दर्शन का विचारक मानते है। इस महान विचारक का जन्म जर्मनी में हुआ था। यह लगभग 90 वर्ष की आयु तक जीवित रहा। इसने अपने जीवन के 60 वर्ष इतिहास विषय की विभिन्न गुत्थियों को सुलझाने में व्यतीत किए थे।

यह सन् 1825 में बर्लिन विश्वविद्याल में इतिहास का प्राध्यापक नियुक्त हुआ था तथा उसने अपना जीवन एक भाषा विज्ञानी की तरह प्रारम्भ किया था। इसकी कार्य पद्धति की प्रमुख

विशेषता "जोत-समीक्षा" विषय पर नियमित गोष्ठियाँ करना था, जिसके परिणामस्वरूप यह विश्वविद्यालयों में इतिहास विषय को प्रतिष्ठापित कर सका।

रॉके विचार में "इतिहास में भगवान निवास करता है, जीवित रहता है और देखा जा सकता है। प्रत्येक कार्य उसका साक्ष्य देता है, प्रत्येक क्षण उसके नाम का गुणगान करता है, और ऐतिहासिक अक्षुण्णता उसका सबसे पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत करती है।

रॉके द्वारा लिखित पुस्तक रोमन और जर्मन जातियों का इतिहास (गोगिरते देयर रोमाविशन उन्द गेर मानिशन पायोल्केर) अत्यन्त महत्व की है। इस पुस्तक की भूमिका में रॉके लिखता है, "इतिहासकार का कर्तव्य है कि जैसा कि भूतकाल में हुआ है, उसका वैसा ही वर्णन करे।" इसी ग्रंथ के एक परिशिष्ट में वह पूर्ववर्ती इतिहासकारों की लिखित पुस्तकों की आलोचना करते हुए वह लिखता है कि ख्याति प्राप्त प्राचीन इतिहासकार निश्चित रूप से प्रमाणित नहीं माने जा सकते। मौलिक सामग्री के आधार पर उनकी भ्रांतियों का पर्दा खोला जा सकता है।"

रॉके की दूसरी प्रसिद्ध पुस्तक 1827 में फ्यूर्सतन कन्द फ्योल्केर फोन स्यूदयोरोया इन सेखत्सेन्तन उन्द जीक्सेतन यारहुन्दर्न अर्थात् 16वीं-17वीं शती का दक्षिण यूरोप की जातियों का इतिहास है। इस पुस्तक में रॉके ने राजनीतिक तथ्यों के साथ वित्तीय और आर्थिक विषयों को भी प्रधानता दी थी।

रॉके की इतिहास के प्रति प्रतिबद्धता को इसी से समझा जा सकता है कि उन्होंने 82 वर्ष की आयु में विश्व इतिहास लिखना प्रारम्भ किया था तथा अपने मृत्यु वर्ष की आयु में उन्होंने इतिहास दर्शन विषयक ग्रंथ लिखने की योजना बनाई थी, परन्तु उनकी योजना मृत्यु हो जाने के कारण पूर्ण न हो सकी।

प्रसिद्ध विचारक क्रॉचे ने रॉके को व्यवहारवादी घोषित किया है तथा क्राँचे कहता है कि उनके दर्शन की प्रमुख विशेषता किसी तथ्य के प्रतिप्राप्त के लिए लिखित सामग्री व साक्ष्य की अनिवार्यता होना है। क्राँचे के ही अनुसार उनकी आलोचना में वैज्ञानिकता थी तो उनकी शैली में कलात्मकता और चरित्र निर्माण में सर्वांगीणता थी।

रॉके की गोष्ठी आयोजित करने की विशेषता के कारण यूरोप में आधुनिक काल में ऐसे सैकड़ों विद्वान पैदा हुए, जिन्होंने यूरोप के इतिहास लेखन के मानदण्ड स्थापित किए। रॉके गोष्ठियों में इतिहासकार बनाता तथा अभिलेखागारों में इतिहास लिखता था। वह उपदेश न देकर स्वयं करता और इस प्रक्रिया में उसने उन धाराओं को मूर्तिमान किया जिन्होंने इतिहासवाद में योग दिया।

जैसा कि यह पूर्व में बतलाया जा चुका है कि 19वीं शताब्दी विज्ञान की प्रतिष्ठा की शताब्दी थी, ऐसी अवस्था में इतिहासविदों ने भी ऐतिहासिक सामग्री को वैज्ञानिक प्रविधि प्रदान करने का प्रयत्न किया। ऐसे विद्वानों में लियोपाल्ड रॉके प्रमुख थे। रॉके ने वैज्ञानिक विचारधारा को प्रतिपादित करते हुए यह कहा कि इतिहासकार का कर्तव्य घटनाओं को मूलरूप में प्रतिपादन करना है तथा घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करते समय इतिहासकार को अपनी अभिरूचि व्यक्त करने का अधिकार नहीं है। यद्यपि रॉके के इस दर्शन को उसके उत्तरवर्ती इतिहासकार पूर्णत:

अपना नहीं पाए थे, उनका प्रमुख बल इतिहास लेखन में यथासंभव वैयक्तिक तत्वों को न्यून से न्यूनतम करना था और वह इसमें सफल भी रहे थे।

साल रूप से रॉके के सिद्धान्तों को अधोलिखित तीन बिन्दुओं में व्यक्त किया जा सकता है : -

(1) इतिहास अथवा इतिहासविद् का कार्य भूत के विषय में निर्णय देने तथा वर्तमान को शिक्षा देने का बहाना करना नहीं है वरन् उसका लक्ष्य अतीत में घटित घटनाओं का उद्घाटन करना है।

(2) इतिहास की प्रत्येक घटना इतिहासकार के लिए समानरूपेण महत्वपूर्ण होती है, सबका अपना अभिप्राय होता है और सभी विशिष्ट होती

(3) इतिहास लेखन का प्रमुख उद्देश्य सार्वभौमिक इतिहास का निर्माण करना है।

रॉके के विचार चिन्तन को डिल्थे ने सही रूप से आगे बढ़ाया था। उसने रॉके के ऐतिहासिक तत्व को गंभीर रूप से लिया और इतिहास को वास्तविकता में सामाजिक विज्ञान बनाने की चेष्टा की। डेल्थे ने रॉके के इस सिद्धांत को स्वीकार कर, इतिहास विशिष्ट घटनाओं की कहानी है तथा यह है कि प्रत्येक युग का अपना महत्व होता है, इसे आगे बढ़ाते हुए डिल्थे तीन निम्न मान्यताएँ स्थापित की :

(1) इतिहास द्वारा ही समस्त मानव का अध्ययन किया जा सकता है।

(2) आत्म प्रकाशनीय वस्तु के रूप में (जीवन और इतिहास) का अर्थ अर्थात् मनुष्य विश्व की रचना स्वयं करता है।

(3) ऐतिहासिक ज्ञान का स्वभाव अर्थात् ऐतिहासिक वास्तविकता व्यक्ति तथा व्यक्तियों द्वारा निर्मित विश्व के बीच की अंत: क्रिया है।

8.4 निश्चयात्मक अभिगम की परिभाषा तथा स्वरूप

निश्चयात्मक अभिगम को प्राकृतिक विज्ञान के अध्ययन में प्रयुक्त ऐसे दर्शन से परिभाषित किया जा सकता है जिस प्रकार से मध्ययुगीन दर्शन ने धर्म विज्ञान की सेवा में अपनी भूमिका का निर्वहन किया था। निश्चयात्मक अभिगम के विचारकों के अनुसार प्राकृतिक विज्ञान में दो वस्तुएं समाहित होती हैं - (1) तथ्यों को अभिनिश्चित करना, (2) नियमों का निर्माण

निश्चयात्मक अभिगम विचारकों के अनुसार तथ्यों का अभिनिश्चयन ऐन्द्रिक बोध से किया जाता था तथा नियमों का प्रत्यक्षत : निर्माण इन तथ्यों के प्रवेश द्वारा सामयीकरण किए जाने से होता था। इस विचारधारा से प्रभावित होकर एक नए प्रकार के इतिहास दर्शन का विकास हुआ जिसे निश्चयात्मक अभिगम के नाम से जाना जाता है।

तत्कालीन इतिहासकारों ने इतिहास दर्शन के इस निश्चयात्मक अभिगम के प्रथम भाग "तथ्यों को अभिनिश्चित करना" सिद्धान्त में उत्साह के साथ संलग्न होकर सभी तथ्यों को, जिनका वह पता लगा सकते थे, जानने हेतु कार्य प्रारम्भ कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप इतिहास सम्बन्धी ज्ञान में विस्तृत अभिवृद्धि हो गयी। ऐतिहासिक ज्ञान में हुई यह अभिवृद्धि अद्वितीय सीमा तक तथ्यों के विशुद्ध एवं आलोचनात्मक परीक्षण पर आधारित थी। इतिहास

दर्शन की दृष्टि से यह युग ऐसा युग था, जिसने इतिहास के सावधानीपूर्वक परिक्षित स्रोत के सामग्री के संकलन से समृद्ध किया था। यह स्रोत सामग्री निश्चित पंचाणों, लेकिन अभिलेखों तथा ऐतिहासिक मूल पाठों एवं अन्य साहित्यिक स्रोतों तथा पुरातात्विक सोच की सम्पूर्ण सामग्री से परिपूर्ण थी। इस समय यूरोप के प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मूमसेन अथवा मेटलेन्ड विस्तृत सूचनाओं के विशेष हो गए थे। इस काल में ऐतिहासिक विवेक ने स्वयं को प्रत्येक पृथक एवं किसी भी संदर्भ में तथ्यों का असीम कर्तव्य निष्ठता से तादात्म्य स्थापित कर दिया था। इस तरह से सार्वभौतिक इतिहास का आदर्श एक निष्फल स्वप्न की तरह व्यर्थ हो गया था तथा ऐतिहासिक साहित्य का आदर्श एक प्रबन्ध हो कर रह गया था। इस विस्तृत विवरणात्मक शोध के परम उद्देश्य के इतस्तत : इस सम्पूर्ण समय में एक निश्चित असहजता विद्यमान थी। लेकिन यह सब निश्यचात्मक अभिगम के मूल अभिप्राय : की आज्ञापालनार्थ किया जाना वाला कार्य था, जिसके अनुसार तथ्यों का अभिनिश्यचन उस प्रक्रिया के प्रथम सोपान के अन्तर्गत किया जा रहा था जिसकी दूसरी अवस्था नियमों की खोज करना था। इतिहासकार भी इस प्रथम सोपान की अवस्था, जिसमें नवीन तथ्यों का अभिनिश्यचन किया जा रहा था, से क प्रसन्न थे। वह यह जानते थे कि तथ्यों के अभिनिश्यचन की यह खोज असीम थी ओर उनको इन तथ्यों को गवेषणा करने और करते रहने से अधिक का ज्ञान नहीं था। लेकिन निश्चयात्मक अभिगम के समझने वाले दर्शनशास्त्री के अभिनिश्चयन के इस अति उत्साह को आशंका से देख रहे थे। तथ्यों के अभिनिश्चयन की इस व्यापक खोज की परम्परा से सामान्य लोगों, जो इतिहास के विशेषज्ञ तो नहीं थे परन्तु जिनकी इतिहास में रूचि थी, की इस बात में कोई अभिरूचि नहीं थी कि कौन सा तथ्य खोजा गया है और कौन सा नहीं खोजा गया है। दूसरी ओर निश्चयात्मक अभिगम दर्शन के विद्वान इस ओर से चिन्तित थे कि जब तक इतिहास का अध्ययन केवल तथ्यों के अभिनिश्चयत तक सीतिम रहेगा, इतिहास वैज्ञानिक नहीं हो सकता था तथा समस्या बुद्धिमानववर्ग तथ्यों के केवल समस्या अभिनिश्चयन से संतुष्ट नहीं था।

इस सम्बंध में निश्चयात्मक अभिगम के समर्थकों ने यह प्रतिपादित करने का प्रयतन किया कि प्रत्येक प्राकृतिक विज्ञान तथ्यों के अभिनिश्चयन से ही प्रारम्भ होता है और उसके पश्चात् वह उनके नैमित्तिक संबन्धो को खोजता है तथा फिर अपने दृढ़ कथन स्वीकार करता है। कोम्टे अनुसार समाजशास्त्र एक ऐसा विज्ञान है, जिसने मानव जीवन से सम्बन्धित तथ्यों को खोजा तथा उसके पश्चात् तथ्यों के मध्य नैमित्तिक संबन्धों को खोज कर स्थापित करने का प्रयत्न किया। इस प्रकार से समाजशास्त्र एक प्रकार के अधिइतिहास हो गए जिन्होंने वैज्ञानिक दृष्टि से चिन्तन कर इतिहास के एक वैज्ञानिक आधार प्रदान किया।

इस तरह से निश्चात्मक अभिगमवादियों के लिए ऐतिहासिक प्रविधि प्राकृतिक प्रविधि से साम्यता रखता था और यही एक कारण था जिससे प्राकृतिक विज्ञान की सभी विधियाँ इतिहास के विश्लेषण में प्रयुक्त की जाती थी। 19वीं शताब्दी के पूर्वार्ध एवं मध्य में ऐतिहासिक स्रोतों के अध्ययन की एक नई विधि ध विकसित हुई थी, जिसे भाषा शास्त्रीय आलोचना पद्धति कहा जाता है, इस पद्धति का उद्देश्य साहित्यिक स्त्रोत से कम विश्वास योग्य प्रारम्भिक एवं उत्तरकाल के भाग को अलग कर अधिक तथ्यात्मक विवरण को अलग करना तथा इस अधिक तथ्यात्मक विवरण का आलोचनात्मक अध्ययन करना था। ऐतिहासिक अध्ययन के क्षेत्र में आई

इस स्वायत्तता ने निश्चयात्मक अभिगमवादियों की अतिप्रवृति का प्रतिरोध कर सकने की क्षमता उत्पन्न की थी। जैसा कि पूर्व में यह बताया जा चुका है कि 19 वीं शताब्दी के इतिहास दर्शन ने निश्चयात्मक अभिगमवादियों के प्रथम विचार "तथ्यों के अभिनिश्चयन को स्वीकार कर लिया था। इस तरह से तथ्यों के निरूप में इतिहासकारों द्वारा 19वीं शताब्दी में दो प्रविधियाँ प्रयुक्त की गयी :

(1) प्रत्येक तथ्य एक ऐसा विषय माना जाता था जो ज्ञान के अलग कार्य द्वारा निश्चित किए जाने योग्य है, और इस प्रकार से इतिहास की दृष्टि से जानने योग्य कुल क्षेत्र पृथक पृथक रूप अनन्त सूक्ष्म तथ्यों के विभाजित हो गया था।

(2) प्रत्येक तथ्य समस्त शेष स्वतन्त्र नहीं माना जाता था लेकिन जानने वाले की तुलना में स्वतन्त्र था जिससे इतिहास के दृष्टिकोण के कारण से आए विषयगत तत्वों को तथ्यों से विलग किया जा सके। इस विचार धारा के अनुसार इतिहासवेता को तथ्यों पर कोई निर्णय नहीं देना चाहिए अपितु उसे तथ्यों को उनके सही रूप में प्रकट कर देना चाहिए।

इन दोनों नियमों की कुछ निश्चित उपयोगिता थी, प्रथम नियम के जानकर इतिहासवेत्ता तथ्यों को विस्तार से तथा अत्यन्त कुशलता से निरूपति करते थे तो दूसरे नियमों के जानकार इतिहासवेत्ता तथ्यों को अपनी भावनाओं के प्रभाव से मुक्त करवाने का प्रयत्न करते थे। इसी विचारधारा से प्रभावित होकर मूमसेन, जो निश्चयात्मक अभिगमवादी इतिहासकारों में सर्वोत्तम था, लैटिन अभिलेखों का संग्रह या रोमन संवैधानिक कानून की पुस्तक संकलित कर सका था तथा यह पुस्तक अविश्वास करने की सीमा तक परिशुद्ध थी। इस प्रथम नियम के विषय में कहा जा सकता है कि यह इतिहास दर्शन की एक ऐसी विद्या थी, जिसके द्वारा निश्चित छोटी समस्याओं को अभूतपूर्व तरीके से अध्ययन किया जा सकता था, दूसरी और इस नियम के द्वारा इतिहास को उसके वृहद् स्वरूप में अध्ययन करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य था।

निश्चयात्मक अभिगम के दूसरे नियम के अन्तर्गत इतिहासकार को यह अधिकार नहीं था कि वह ऐतिहासिक तथ्यों पर अपना निर्णय प्रदान करे। यदि इतिहासकार इस नियम को स्वीकार करता है तो वह विभिन्न समयों पर शासकों द्वारा स्वीकार की गयी नीतियों, आर्थिक सिद्धांतों, धार्मिक आन्दोलनों व विचारों अपनी राय निर्मित नहीं कर सकता है। अत: यदि इस नियम को इतिहास दर्शन में स्वीकार कर लिया जाए तो इतिहास घटनाओं को जन्म देने वाले विचारों का विषय न होकर बाह्य घटनाओं का क्रम निर्धारित करने, वाला विषय होकर रह जाएगा। इतिहास दर्शन के निश्चयात्मक अभिगम को स्वीकार कर लेने से इतिहास मात्र राजनीतिक इतिहास रह जाएगा तथा कला, धर्म, विज्ञान तथा धर्म के इतिहास का अध्ययन कर लेने वाला विषय नहीं रहेगा।

8.5 निश्चयात्मक अभिगम का परवर्ती विचारधारा पर प्रभाव

कॉलिनवुड ने वैज्ञानिक इतिहास का विवेचन करते हुए लिखा है कि 19वीं शताब्दी के अन्त में इतिहास दर्शन के क्षेत्र में विकसित हुई विचारधारा पर निश्चात्मक अभिगम का काफी

प्रभाव था तथा इस नई विचारधारा को निश्चयात्मक अभिगम से अपना पृथक अस्तित्व स्थापित करने में बहुत कठिनाई हुई थी। निश्चयात्मक अभिगम की सर्वाधिक आलोचना प्रारम्भ में हुई। यह समय उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध तथा बीसवीं शताब्दी का पूर्वार्ध था।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि निश्चयात्मक अभिगम इतिहास दर्शन में अभिगम प्रभावी रहा है तथा कालिनवुड के अनुसार इतिहास दर्शन आज भी स्वयं को निश्चयात्मक अभिगम के भ्रमित जाल से स्वयं को सुलझाने के लिए प्रयत्नशील है तथा यह स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा है कि इतिहास, इतिहासकार के मस्तिष्क द्वारा भूत के विचारों को पुनर्व्यवस्थापित करने के अलावा कुछ नहीं है।

8.6 निश्चयात्मक अभिगम पर रॉके का प्रभाव:

रॉके के अनुसार "इतिहासकार का कर्तव्य है कि जैसा भूतकाल में हुआ है, उसका वैसा ही वर्णन करे। "क्राँचे के अनुसार" रॉके के दर्शन की प्रमुख विशेषता किसी भी तथ्य के प्रतिपादन के लिए लिखित सामग्री व साक्ष्य की अनिवार्यता होना है।" इसके अतिरिक्त रॉके के दर्शन की एक प्रमुख विशेषता इस धारणा की स्थापना करना था कि इतिहासकार का कर्तव्य घटनाओं को मूलस्वरूप में प्रतिपादित करना है तथा घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करते समय इतिहासकार को अपनी अभिरूचि व्यक्त करने का अधिकार नहीं है। रॉके के इतिहास दर्शन सम्बन्धी उक्त विचारों का अवलोकन करने से इस धारणा को बल मिलता है कि निश्चयात्मक अभिगम सम्बन्धी इतिहास दर्शन पर रॉके की विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव था तथा उन्नीसवीं सदी के इतिहास दर्शन को सर्वाधिक प्रभावित रॉके की विचारधारा के माध्यम से निश्चयात्मक अभिगमवादियों ने प्रभावित किया था।

8.7 उपसंहार

पिछले पृष्ठों में किए गए विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि रॉके द्वारा स्त्रोत सामग्री के विशिष्ट महत्व की धारणा के प्रतिपादन से निश्यचयात्मक अभिगमवादी इतिहासकार सर्वाधिक प्रभावित थे तथा इस विचारधारा ने उन्नीसवीं शताब्दी में इतिहास दर्शन को अत्यधिक प्रभावित किया था। इतिहास के सार्वभौमिक नियमों की स्थापना के सिद्धांत तथा घटनाओं के विवरण के अतिरिक्त इतिहासकार को अपनी अभिरूचि व्यक्त करने का अधिकार नहीं है। इन दो तत्वों को छोड़कर यदि निष्पक्ष दृष्टि से विचार किया जाए तो निश्चयात्मक अभिगम के कारण ही समस्त विश्व में स्रोत सामग्री संकलित हो सकी। जहां यूरोप में समस्त लैटिन अभिलेख एकत्र किए जा सके जो वहीं भारत में विभिन्न शासन कालों में हुए राजाओं के अभिलेखों का संकलन हो सका था।

जैसा कि हम जानते है कि भारत में हस्तलिखित पाण्डुलिपियों की एक लम्बी परम्परा रही है। सम्भवत: यूरोप के और बाद में भारतीय भाषा शाली विद्वानों ने निश्चयात्मक अभिगमवादियों से प्रभावित होकर ही विभिन्न पाण्डुलिपियों के सम्पादन तथा अनुवाद का कार्य प्रारम्भ किया, जिसके फलस्वरूप अतीत के गर्भ में विलुप्त हो चुकी साहित्यिक सामग्री मूल पाठ एवं अनुवाद के रूप में हमारे सम्मुख आ सकी थी। भारतीय साहित्यिक परम्परा के अवलोकन से यह दृष्टिगोचर होता है कि भारतीय मनीषी कुछ कुछ इतिहास लेखन के क्षेत्र में निश्चयात्मक अभिगम की विचारधारा से सम्बंध रखते थे। प्रसिद्ध पुस्तक राजतरंगिणी के कवि कल्हण का यह

कथन, कि सच्चा कवि वह है जो बिना किसी राग- द्वेष के घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करता है, निश्चयात्मक अभिगम का ही प्रतिनिधित्व करता प्रतीत होता है।

8.8 बोध-प्रश्न

1. रॉके के इतिहास - दर्शन की व्याख्या कर निश्चयात्मक अभिगम पर रॉके के दर्शन के प्रभाव की विवेचना कीजिए।
2. निश्चयात्मक अभिगम ने 19वीं शताब्दी के इतिहास दर्शन को सर्वाधिक प्रभावित किया। इस कथन की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

8.9 संदर्श ग्रंथ

इतिहास दर्शन	- डा. बुद्ध प्रकाश
इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धांत (सं.)	- डा. गोविन्द चन्द्र पाण्डे
द आइडिया ऑफ हिस्ट्री	- आर.ज़ी. कॉलिंगवुड

इकाई 9

इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या (मार्क्सवादी सिद्धांत)

इकाई की संरचना

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 इतिहास दर्शन की दो धाराऐं : आध्यात्मवादी एवं भौतिकवादी

9.3 इतिहास का विकासवादी सिद्धांत

9.4 वैज्ञानिक इतिहास लेखन की तलाश

9.5 ऐतिहासिक भौतिकवाद

9.6 समाज का सम्पूर्ण दर्शन

9.7 सामाजिक परिवर्तन की शक्तियां एवं प्रक्रिया

9.8 वर्ग और वर्ग संघर्ष

9.9 ऐतिहासिक युग

9.10 इकाई सारांश एवं अभ्यास कार्य

9.11 संदर्भ अध्ययन सामग्री

9.0 उद्देश्य

(1) इतिहास दर्शन की दो धाराओं : आध्यात्मवादी एवं भौतिकवादी की तुलनात्मक जानकारी प्रदान करना।

(2) भौतिकवादी इतिहास दर्शन के आधारभूत तत्वों का बोध कराना।

(3) वैज्ञानिक इतिहास लेखन की विधियों की जानकारी प्रदान करना।

(4) अब तक के सम्पूर्ण मानव इतिहास का युग विभाजन एवं युग परिवर्तन की प्रक्रिया को समझाना।

9.1 प्रस्तावना

इतिहास दर्शन की दो प्रमुख धाराऐं हैं, आध्यात्मिक या आदर्शवादी एवं भौतिकवादी। जहां पहली धारा इतिहास को भावनावाद एवं मानसिक विलासिता तक ही सीमित रखती है वहीं दूसरी धारा इसे समाज विज्ञान का दर्जा प्रदान करती है। भौतिकवादी सिद्धांत ने स्थापित किया है कि इतिहास बोध के बिना कोई भी विज्ञान परिप्रेक्ष्यहीन होता है। इतिहास न केवल अतीत का ज्ञान देता है, वर्तमान की समझ एवं भविष्य की दृष्टि प्रदान करता है। इसलिये वैज्ञानिक दृष्टि के लिए इतिहास की समझ अनिवार्य शर्त है एवं इसका अभाव व्यक्ति और समाज को भटकाता है।

मार्क्स के पूर्व भी भौतिकवादी सिद्धांत इतिहास की व्याख्या करता रहा। इनमें प्राकृतिक विज्ञान की विद्या को इतिहास के विकास पर लागू करने का प्रयास किया गया है। जबकि इतिहास प्राकृतिक विज्ञान जैसा वस्तुगत और निरपेक्ष नहीं हो सकता। इसे इतिहासकार की मनोवृत्ति, पूर्वाग्रह, मानसिकता, बौद्धिकस्वर, दृष्टि और उसका वर्ग चरित्र प्रभावित करता है।

मार्क्स ने सामाजिक विकास को समझने की प्रयोगशाला के रूप में इतिहास के अध्ययन को अनिवार्य माना। उसने इतिहास की जिस भौतिकवादी व्याख्या को स्थापित किया था, उसे द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के नाम से परिभाषित किया। उसका आधार था इतिहास की गतिदायिनी शक्तियों और प्रवृत्तियों की पहचान।

मार्क्स के इतिहास दर्शन को ऐतिहासिक भौतिकवाद के नाम से जाना जाता है। ऐतिहासिक भौतिकवाद द्वन्द्वात्मक एवं भौतिकवाद को मानव समाज पर लागू करने का परिणाम है। ऐतिहासिक भौतिकवाद को द्वन्द्वात्मक प्रणाली ने पूर्ण बनाया। ऐतिहासिक भौतिकवाद मार्क्सवादी दर्शन का एक अभिन्न अंग है, जिसने इतिहास अध्ययन को विज्ञान की कोटि में ला खड़ा किया। इसका उद्देश्य मानव समाज की संरचना एवं इसके विकास के नियमों का अध्ययन करना है। ऐतिहासिक भौतिकवाद के जन्म ने सामाजिक विकास को मानव विचारों में नैसर्गिक ऐतिहासिक प्रक्रिया को इसकी जटिलता एवं विसंगतियों के उपरांत तरीके से यह निर्धारित करना संभव बनाया कि समाज कैसे एवं किस दिशा में विकसित होता है।

मार्क्स के पूर्व समाज विज्ञान के क्षेत्र में आदर्शवाद का बोल-बाला था। न केवल आदर्शवादी बल्कि भौतिकवादी भी सामाजिक विकास को सामाजिक विचारों के परिवर्तन का परिणाम मानते थे। जबकि दोनों ही यह तलाश करने में असफल रहे कि सामाजिक विचारों के परिवर्तन के कारण क्या है? सामाजिक चितकों एवं इतिहासकारों की मान्यता थी कि सामाजिक जीवन का सृजन मानव ने स्वयं किया था। इस मान्यता ने भ्रम उत्पन्न किया कि सामाजिक संबन्धो का निर्माण मानव ने स्वयं अपनी चेतना के अनुकूल किया। किन्तु यह जवाब देने में असमर्थ रहे कि मानव में चेतना कहां से आती है।

मार्क्स ने अपने ऐतिहासिक सिद्धान्त में उपरोक्त सभी जटिल समस्याओं का हल प्रस्तुत किया। काफी सीमा तक मार्क्सवादी सिद्धांत के अनुसार इतिहास की विषय वस्तु के निर्धारण से उपरोक्त सभी दार्शनिक जटिलताओं का अन्त संभव है, जिसने इतिहास ज्ञान को सहज व सरल बनाया। इतिहास की विषय वस्तु सामाजिक जीवन के विविध पक्षों के अध्ययन में निहित है कि कैसे मानव समाज का उदय हुआ, परिवर्तन आये एवं विकसित हुआ, सामाजिक जीवन की स्थापना के क्या कारण रहे? वही इसके विकास की विधि है। इतिहास का अध्ययन यह भी जांच करता हे कि सामाजिक विकास में जनता का क्या महत्व है एवं इस प्रक्रिया में विशेष व्यक्तियों का स्थान क्या है, विचार कहां से आते हैं? एवं वे समाज में क्या भूमिका निभाते है, सामाजिक विकास को भौगोलिक वातावरण किस सीमा तक प्रभावित करता है, समाज के विकास के विभिन्न सोपान कौन से हैं; एक सामाजिक सोपान दूसरे से क्या भिन्नता लिए होता है, किस प्रकार नया चरण पिछले चरण को बदलता है? कैसे एवं किस दिशा में इतिहास आगे बढ़ा? यही वे प्रश्न हैं, जिनका जवाब इतिहास अध्ययन में शामिल होता है।

9.2 इतिहास की दो धाराऐं : आध्यात्मवादी एवं भौतिकवादी

इतिहास की मुख्यत : दो धाराऐं हैं - पहली आदर्शवादी आध्यात्मवादी एवं दूसरी भौतिकवादी। उपरोक्त दोनों अवधारणाओं में मूलभूत अंतर है एवं इनमें कहीं समानता दिखाई नहीं देती। इनमें प्रारम्भिक अंतर विचारों के उत्पन्न होने की प्रक्रिया के सम्बंध में है। आदर्शवादियों की

मान्यता है कि पदार्थ विचार जन्य है, जबकि भौतिकवादी पदार्थ को विचारों का जनक मानते हैं। उदाहरणार्थ लकड़ी के बिना मेज का विचार, पत्थर चूने के बिना मकान का विचार संभव नहीं है। अत : भौतिकवादी विचारधारा के अनुसार पदार्थ अथवा भौतिक स्थितियां ही विचार को जन्म देती हैं। कहने का अर्थ यह है कि आदर्शवादी विचारक विचारों को सामाजिक परिवर्तन का कारण मानते रहें है। अत: आदर्शवादियों को कल्पनावादी कहना उचित है। जबकि इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या इस संदर्भ में शुद्ध वैज्ञानिक समझ प्रदान करती है। भौतिकवाद ने आदर्शवाद के विपरीत मानवक्रिया के उद्देश्यों को वैचारिक परिधि से दूर लाकर यह सिद्ध किया कि भौतिक स्थितियां वैचारिक उद्देश्यों की जन्मदात्री है। इतिहास की भौतिकवादी समझ के अनुसार समाज का भौतिक जीवन प्राथमिक है एवं सामाजिक चेतना जो आध्यात्मिक क्रिया है माध्यमिक है। ऐतिहासिक भौतिकवाद सामाजिक विकास में विचारों के भारी महत्व को कभी नजरअंदाज नहीं करता। किन्तु यह विचारों को मानव की जीवन दशाओं का प्रतिबिम्ब मानता है एवं जो सामाजिक जीवन के भौतिक विकास की आवश्यकता का प्रस्फुटन होता है। अत: पूर्व के इतिहासकार विचारों को प्रधान मानते रहे जो एक स्वाभाविक दोष था।

आध्यात्मवादी दार्शनिक ब्रह्माण्ड में स्थित सभी चीजों की पृथक स्थिति मानता है। इसके अनुसार परिवर्तन किसी चीज को मात्रा में बढ़ या घटाता है या स्थान बदलता है। इस परिवर्तन का कारण वस्तु में अन्तर्निहित न होकर बाहरी कारण होता है। भौतिकवादी दार्शनिक मानते हैं कि ब्रह्माण्ड में स्थित किसी भी चीज का अस्तित्व अलग नहीं होता बल्कि आपस में जुड़ी होती है। उदाहरणार्थ हम वृक्ष को लें, वृक्ष अपने आप में पृथक चीज नहीं है बल्कि यह बीज, पानी, मिट्टी, उर्वरक, कार्बन, वायु आदि का योग है। इन तत्वों में से किसी भी एक तत्व का अभाव वृक्ष के अस्तित्व को समाप्त कर सकता है। भौतिकवाद के अनुसार किसी वस्तु में परिवर्तन के कारण अन्तर्निहित होते हैं। जैसे अंडे से चूजा पैदा करने के लिए एक निश्चित तापमान अंडे को देना आवश्यक होता है। यदि वही तापमान एक पतार को दिया जाय तो उससे चूजा पैदा नहीं हो सकता। अत: बाह्य तत्व तभी कारगर हो सकते हैं जबकि आंतरिक तत्व इसके अनुकूल हों।

आध्यात्मवादी विचार के अनुसार संसार में सभी वस्तुओं का स्वरूप इनके आरम्भ से ही समान रहा है, इसीलिए इस विचार के लोग वेद, रामायण, महाभारत, गीता, कुरान, बाइबल आदि के ज्ञान को अंतिम सत्य मानते हैं एवं इनके ज्ञान को सदैव के लिये उपयोगी मानते हैं तथा वे दास समाज, सामंती समाज, पुंजीवादी समाज व औपनिवेशिक समाज के मध्य विशेष भिन्नता नहीं मानते। भौतिकवादी धर्म ग्रंथों को उनके रचनाकाल का इतिहास जानने के श्रोत के रूप में उपयोग करते हुए मानते हैं कि उस समय इनकी सामाजिक प्रासंगिकता थी। इतिहास मनुष्य की प्रगति यात्रा के शानदार महाकाव्य जैसा है। सभी धर्म ग्रंथों में अतीत को स्वर्णकाल एवं भविष्य को कयामत के दिन के रूप में वर्णित किया गया है। इनके अनुसार समाज पतनोन्मुख है और पाप का घड़ा भर रहा है जो एक दिन फूटेगा एवं प्रलय होगी। तभी परिवर्तन संभव है। ऐसी विचारधारा मनुष्य को आतंकित एवं निराश करती है। इसके विपरीत इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या बताती है कि मनुष्य अमीबा से आदमी बनने की मंज़िल पूरी कर आदमी से इन्सान एवं इन्सान से बेहतर इन्सान बनने में संघर्षरत है। आदिम जंगली अवस्था की

प्रकृति की गुलामी तोड़कर मनुष्य आजाद हुआ। उसने अपने उपकरण बनाए। बुद्धि का विकास किया और प्रकृति से संघर्ष कर उस पर नियंत्रण करने लगा। दिन-ब-दिन सभ्यता और संस्कृति का विकास होने लगा। इस दौरान इसने स्वयं तरह-तरह के बंधन पैंच किए-वर्गों, वर्णों, गुटों में बंटा। आपस में लड़ता रहा, संहार करता रहा। फिर भी इस सब के बावजूद वह धरती के अलावा आकाश-पाताल भी भेदने लगा। अपने बंधन तोड़ने लगा एवं बेहतर इंसान बनने की लड़ाई में लगा रहा। इतिहास मानव एवं मानव-समाज के विकास कम का लेखा-जोखा है।

जहाँ आध्यात्मवादी इतिहासकार नियतिवाद को अपनी व्याख्या का आधार बनाता है 'वहीं भौतिकवादी इतिहासकार नियतिवाद पर भयानक प्रहार करता है। आध्यात्मवाद मनुष्य को अकर्मण्य बनाने की चेष्टा करता है, जिससे उच्चवर्गों द्वारा निम्नवर्गों का शोषण निरन्तर चलता रहे। अर्थात् इतिहास की आध्यात्मवादी व्याख्या मनुष्य को निकम्मा एवं नाकारा बनाकर समाज की यथास्थिति की पक्षधर होती है, जबकि भौतिकवादी इतिहासकारों के अनुसार इतिहास से पता लगता है कि इन्सान की जीत हाथ पर हाथ धरने से नहीं, महापुरुषों के इंतजार से नहीं, बल्कि स्वयं संयुक्त रूप से शक्तिशाली बनने से सम्भव हुई है।

आध्यात्मवादी सामाजिक विकास का कारण वाह्य मानते हैं, जैसे ईश्वर अथवा आलौकिक शक्ति। वे महान लोगों को इतिहास का निर्माता मानते हैं एवं स्वाभाविक तौर पर समाज के विकास में महान लोगों के दिमाग की भूमिका को निर्णायक मानते हैं। सार रूप में वे सामाजिक विकास के कारण जनता से सामाजिक व्यवहार को अनदेखा करते हैं। इसलिए वे आम लोगों की इतिहास में आधारभूत भूमिका को समझने में असमर्थ रहे हैं।

मार्क्स के पूर्व के इतिहासकार चाहे वे आदर्शवादी रहे हों अथवा भौतिकवादी सभी के सिद्धांतों में यह कमी थी कि वे इतिहास को आम जनता का इतिहास न मानकर इसे मुख्यत: विशेष व्यक्तियों की क्रियाओं का लेखा-जोखा मानते थे। अधिकांश आदर्शवादी इस पर जोर देते हैं कि विचार इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इनके अनुसार विशेष व्यक्तित्व जन्म लेते हैं एवं विशेष प्राकृतिक (दैवीय) योग्यता लेकर आते हैं तथा विशेष प्रतिभा गर्भ में ही आ जाती है। ये विशेष व्यक्तियों को प्रथम स्थान देते हैं एवं आम लोगों को मातहत या अधीन का दर्जा देते हैं तथा वे मानते हैं कि इतिहास का निर्माण मुट्ठीभर विशेष व्यक्तित्व करते हैं। यह धारणा जनता की सृजन शक्ति में अविश्वास रखती है एवं ऐतिहासिक विकास के निर्धारक नियमों को अमान्य ठहराती है यही नहीं बल्कि इतिहास की यह हीरोवादी व्याख्या आम आदमी में अकर्मण्यता एवं निष्क्रियता का संचार करती है, शोषण के खिलाफ जन संघर्ष को अवरुद्ध करती है एवं शोषकों का हित साधन करती है।

आदर्शवाद के विपरीत ऐतिहासिक भौतिकवाद जनता की महान ऐतिहासिक भूमिका का वर्णन करता है, जो समाज की सम्पदा की सृजक, भौतिक सामग्री की उत्पादक है एवं ऐतिहासिक विकास में निर्णायक भूमिका निभाती है। अत: मार्क्स की भौतिकवादी इतिहास की व्याख्या स्थापित करती है कि आम लोग समाज के प्राथमिक संचालक हैं एवं सामाजिक विकास की निर्णायक शक्ति हैं। यह व्याख्या विशेष व्यक्तियों की भूमिका को नकारती नहीं है, किन्तु विशेष व्यक्तित्वों की भूमिका को आम लोगों की गतिविधियों के परिप्रेक्ष्य में देखती है। अत: व्यक्ति

विशेष की भूमिका केवल सामाजिक विकास के नियमों की जानकारी के तहत ही निर्धारित की जा सकती है।

इतिहास की मार्क्सवादी, भौतिकवादी व्याख्या ने उन आदर्शवादियों की इतिहास की अवधारणा को भी अमान्य ठहराया है जो अपने विचारों को भौतिकवादी जामा पहनाने का असफल प्रयास करते हैं। उदाहरणार्थ भौगोलिक व्याख्या को मानने वाले इतिहासकार सामाजिक विकास में भूगोल की निर्णायक भूमिका मानते हैं जो तर्क से सर्वथा परे है। यह एक निर्विवाद तथ्य है कि समाज भौगोलिक स्थितयों में स्थित विभिन्न देश सामाजिक विकास की अलग-अलग सीढ़ी पर खड़े होते हैं। उदाहरणार्थ वियतनाम एवं थाईलैण्ड समान भौगोलिक स्थितियों पर स्थित होने के उपरांत भी सामाजिक विकास के मित्र स्तरों पर हैं। जहाँ वियतनाम समाजवादी स्तर पर है वहीं थाईलैण्ड औपनिवेशिक स्थितियों के मध्य झूल रहा है। इसी प्रकार भारत एवं पाकिस्तान लगभग समान भौगोलिक दशाओं में स्थित होने के उपरांत सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक भिन्नता लिये हुए हैं। भौगोलिक एवं प्राकृतिक सम्पदा थी सामाजिक विकास में निर्णायक भूमिका नहीं निभाती। उदाहरण के लिए ब्राजील प्राकृतिक सम्पदा से समृद्ध होने के उपरांत भी विश्व के सर्वाधिक गरीब देशों की श्रेणी में आता है। हम भौगोलिक तत्व को इस आधार पर भी निर्णायक नहीं मान सकते हैं कि एक देश में एक जैसी भौगोलिक स्थिति रहने के उपरांत भी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सांस्कृतिक आदि परिवर्तन होते रहते हैं। भौगोलिक स्थितियों में भी परिवर्तन होते हैं। किन्तु वे सामाजिक परिवर्तनों की तुलना में अत्यधिक धीमे होते हैं। जहाँ भौगोलिक परिवर्तन हजार या लाख वर्षों में संभव होते हैं वहीं सामाजिक परिवर्तन दस या सौ वर्षों में होते हैं। अत: कम अवधि में होने वाले परिवर्तनों के कारण लम्बी अवधि में होने वाले परिवर्तन नहीं हो सकते। मार्क्सवादी भौतिकवाद के अनुसार भूगोल की इतिहास में एक भूमिका अवश्य होती है, किन्तु वह निर्णायक नहीं होती।

इसी प्रकार जनसंख्या के तत्व पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। जॉन मालथस ने सामाजिक विकास में जनसंख्या के तत्व को निर्णायक माना है। जनसंख्या समाज का प्राथमिक आधार होती है, किन्तु जनसंख्या का घटना-बढ़ना सामाजिक परिवर्तन का कारण नहीं हो सकता। इसी प्रकार किसी देश की जनसंख्या गरीबी अथवा अमीरी का कारण नहीं हो सकती। अनेक अधिसंख्य जनसंख्या वाले देश समृद्ध हो सकते हैं, जबकि कम जनसंख्या वाले गरीब एवं इसके विपरीत स्थिति भी देखने को मिल सकती है। अत: इतिहास की मार्क्सवादी भौतिकवादी व्याख्या जनसंख्या को इतिहास की निर्णायक शक्ति नहीं मानती।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि जहाँ विचारवादी, आदर्श या आध्यात्मवादी विचारधारा ने इतिहास दृष्टि में अनेक भ्रम एवं विसंगतियाँ उत्पन्न की, वहीं भौतिकवादी विचारधारा ने इनका खण्डन कर वैज्ञानिक इतिहास दृष्टि को खोजने में सफलता प्राप्त की।

9.3 इतिहास का विकासवादी सिद्धांत:

मार्क्स ने इतिहास के विकासवादी सिद्धांत का प्रतिपादन किया। इस सिद्धांत ने इतिहास की चक्रवादी अवधारणा पर गहरा प्रहार किया। चक्रवादी व्याख्या के अनुसार सृष्टि की रचना होती है, विकास होता है एवं समाप्त हो जाती है तथा सृष्टि की पुनर्रचना होती है। इसके अनुसार यह क्रम निरन्तर रूप से चलता रहता है। इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या उपरोक्त विचार को अमान्य ठहराती है। चक्रवादी व्याख्या भाग्यवाद एवं नियतिवाद का अभिन्न अंग है। यह इतिहास

में मानव के योगदान को नकारती हैं। इसके विपरीत मार्क्स ने इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या के द्वारा इतिहास का विकासवादी सिद्धांत स्थापित किया। सृष्टि की रचना से लेकर आज तक कोई प्रलय का उल्लेख नहीं मिलता। पृथ्वी पर जीवों की उत्पत्ति से लेकर आज तक का विकास इस बात का साक्षी है।

आज भी सामान्य समझ के व्यक्ति से इतिहास अध्ययन की उपयोगिता के संदर्भ में पूछा जाय तो वह शीघ्र यही जवाब देगा कि हमें इतिहास से शिक्षा मिलती है कि जो गलतियाँ हमने भूतकाल में की हैं वे पुन: न हों। यह समझ तर्क से काफी परे दिखाई देती हैं। पहली बात तो यह है कि जो घटना जिन स्थितियों में घटी होती है वे स्थितियाँ बदल जाती हैं। अत: एक ऐतिहासिक घटना की पुनरावृत्ति नहीं होती। समाज कमी पीछे की ओर नहीं जाता। बल्कि यह सदैव अग्रगामी होता है। अत: मार्क्स ने इस अवधारणा का खण्डन किया कि इतिहास अपने आपको दुहराता है। अत: परिस्थितियों के बदलने से भूतकाल में घटित घटना भविष्य में नहीं घटती। उदाहरणार्थ यह एक सर्वमान्य सत्य है कि बंदर से मानव बना। किन्तु यह एक निश्चित प्राकृतिक परिस्थिति में हुआ, अत: अब बंदर से मानव बनना संभव नहीं है। कार्ल मार्क्स ने प्राकृतिक विज्ञान की द्वन्द्ववादी प्रक्रिया को समाज विज्ञान में लागू किया, जिससे इतिहास की-वैज्ञानिक समझ की उपज हुई। इतिहास की व्याख्या में व्याप्त अनेक दोषों एवं भ्रमों को दूर कर मार्क्सवादी भौतिकवादी इतिहास लेखन ने इतिहास को विज्ञान की कोटि में रखने का प्रयास किया है।

9.4 वैज्ञानिक इतिहास लेखन की तलाश:

भौतिकवादी सामाजिक विचारकों ने वैज्ञानिक इतिहास की तलाश आरम्भ की। सामाजिक गति को पहचानने के कम में तर्क पद्धति का सहारा भी सर्वप्रथम भौतिकवादी विचारकों ने लिया। फ्रांसीसी विचारक देकार्त (1596-1660) की दृष्टि में हर वह चीज निकृष्ट होती है जो तर्क की कसौटी पर न कसी जा सके। आगे उसकी मान्यता थी कि सच्चे से सच्चा इतिहास रूमानियत से मुक्त नहीं हो सकता। जो तर्क विरोधी है। अत: उसने इतिहास को मानव विज्ञान के क्षेत्र में कोई महत्व देने से इन्कार कर दिया। किन्तु उसने जिस तर्क पद्धति का प्रतिपादन किया उसका उपयोग ज्ञान एवं दर्शन के विभिन्न क्षेत्रों में होने लगा तथा अठारहवीं सदी आते-आते इतिहास के क्षेत्र में भी इसका प्रवेश होने लगा। फ्रांस की क्रांति (1789) के आस-पास फ्रैंच इतिहासकारों ने वैज्ञानिक इतिहास लेखन को एक दिशा प्रदान की। मार्क्स की इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या का मुख्य आधार समाज का वर्गों में विभाजन एवं वर्ग संघर्ष है। वर्ग संघर्ष के नियम की खोज भौतिकवाद की विशेषता है। समाज वर्गों में विभाजित होता है। यह मान्यता मार्क्स के पूर्व भी मौजूद थी। किन्तु विभाजन का आधार एवं सार सर्वथा अस्पष्ट ही था। वर्ग संघर्ष का विचार सर्वप्रथम पुनर्जागरण के बाद क्रांतिकाल में फ्रेंच इतिहासकारों ने रखा किन्तु ये फ़ैंच इतिहासकार इस विचार को निश्चित एवं वैज्ञानिक अंजाम देने में असफल रहे। जर्मन इतिहासकार रान्हे (1795-1886) वैज्ञानिक इतिहास लेखन का पक्षधर था। उसने भौतिक तत्वों एवं तर्कों के आधार पर इतिहास लेखन का प्रयास किया किन्तु इनके विचारों में राष्ट्रवादी विचारधारा की बहुलता के कारण इनके लेखन में अनेक दोष आये।

मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धांत को सामाजिक विकास की प्रक्रिया पर लागू किया। जिसे ऐतिहासिक भौतिकवाद के नाम से जाना जाता है। इस सिद्धांत के द्वारा मार्क्स ने इतिहास को पूर्ण विज्ञान बनाने का प्रयास किया है। कार्ल मार्क्स ने हीगेल, फायरबाख आदि का अध्ययन किया। अत: में वह इस नतीजे पर पहुँचा कि मनुष्य परिस्थितियों को पैदा भले करता हो, वह स्वयं भी परिस्थितिजन्य होता है। उसके अनुसार इतिहास मृत तथ्यों का संग्रह नहीं है जैसा कि "पाजिटिविस्टों" की व्याख्या से लगता है, न ही व्याख्या कारनामों का जमघट जैसा कि आदर्शवादियों की व्याख्या से लगता है। मार्क्स के अनुसार इतिहास वर्ग-संघर्ष के माध्यम से निरन्तर विकासोन्मुख मानव समाज के अध्ययन का आधार है।

मार्क्स द्वारा प्रतिपादित ऐतिहासिक भौतिकवाद का सिद्धांत द्वन्द्ववादी प्रक्रिया के माध्यम से तर्कों पर आधारित है। इसके अनुसार मनुष्य जैसा होता है वैसी ही उसकी अभिव्यक्ति होती है। वह कैसा है इसका सीधा सम्बन्ध उसकी उत्पादन प्रक्रिया से जुड़ा होता है। वह क्या उत्पादन करता है और कैसे करता है? मनुष्य की चेतना उसकी भौतिक स्थितियों पर निर्भर करती है, जो निश्चित उत्पादन प्रणाली पर आधारित होती है। इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या का आधार प्रत्येक सामाजिक संरचना को समझना है। मार्क्स के अनुसार सामाजिक संरचना का आधार मानव जीवन कम जारी रखने के लिए किया गया उत्पादन एवं उत्पादन का वितरण है। समाज व्यवस्था इस पर निर्भर करती है कि क्या उत्पादन होता है, यह कैसे उत्पादित होता है एवं कैसे उत्पाद का विभाजन या वितरण होता है? जिस प्रकार सम्पदा एवं उत्पाद का वितरण होता है उसी प्रकार समाज का अनेक वर्गों में विभाजन होता है। इस दृष्टिकोण से हर सामाजिक परिवर्तन और राजनीतिक क्रांति का मूलभूत कारण वर्ग संघर्ष होता है।

मार्क्स ने सामाजिक विकास के वस्तुगत नियमों को तलाशने का प्रयास किया है। मार्क्स प्रकृति की द्वन्द्वात्मकता से द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद तक पहुँचा और उसे इतिहास पर लागू कर ऐतिहासिक भौतिकवाद का सृजन कर यह व्याख्या की, कि मानव समाज कैसे आदिम साम्यवाद से पूंजीवादी व्यवस्था तक पहुँचा है? इस विश्लेषण से मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन के नियमों का आधार उत्पादन के साधनों एवं उत्पादन के सम्बन्धों में परिवर्तन को सिद्ध किया और वर्ग संघर्ष को निर्णायक अनिवार्य माध्यम बताया। उसने ऐतिहासिक भौतिकवादी सिद्धांत के आधार पर कहा कि जिस प्रकार सामंतवाद को पराजित कर पूंजीवाद विकसित हुआ है, वैसे ही पूंजीवाद को ध्वंस कर सर्वहारा अपना राज्य कायम करेगा।

9.4.1 द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद:

मार्क्स के अनुसार जीवन और जगत का परम सत्य भौतिक है। आत्मा और ईश्वर का अस्तित्व नहीं है। इनका विचार केवल कपोल कल्पित है। मानव चेतना का आधार भौतिक है। बिना भौतिक तत्व के चेतना अस्तित्व में नहीं आ सकती। मार्क्स के अनुसार राज्य और संगठित धर्म शोषण और उत्पीड़न के हथियार हैं। आध्यात्मवादी दर्शन ने इन्हें पुष्ट बनाया है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद प्रकृति एवं ब्रह्माण्ड की वस्तुओं और घटनाओं को आकस्मिक मात्र नहीं मानता, बल्कि सभी एक दूसरे से जुड़ी होती है एवं क्रमिक प्रक्रिया का परिणाम होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार प्रकृति एवं मानव समाज की वस्तुएं तथा घटनाएँ अचानक ही अथवा किसी विशेष आध्यात्मिक शक्ति द्वारा नहीं घटती।

किन्तु वे निश्चित वस्तुगत नियमों के द्वारा संचालित होती हैं। प्रकृति में जब ज्वालामुखी का विस्फोट होता है तो ऐसा निश्चित प्राकृतिक नियमों के अनुसार ही होता है, उसी प्रकार जब समाज में कोई जबरदस्त क्रांतिकारी परिवर्तन होता है तो ऐसा भी सामाजिक आर्थिक विकास की द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया के नियमों के अन्तर्गत होता है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का कार्य प्राकृतिक और सामाजिक घटनाओं के नियमों को खोज कर उन्हें मानव के उपयोग में लाना है।

इस प्रकार मार्क्स की द्वन्द्वात्मक प्रणाली के अनुसार प्रकृति की किसी भी वस्तु अथवा घटना को अन्य वस्तुओं या घटनाओं को पृथक सम्बन्धित तथा स्वतंत्र रूप में कभी नहीं समझा जा सकता है। प्रत्येक वस्तु दूसरी वस्तु से सम्बन्धित होती है। और प्रत्येक घटना दूसरी घटना से जुड़ी रहती है। उन सबका प्रभाव प्रत्येक पर और प्रत्येक का प्रभाव सब पर होता है। घटना प्रवाह का समझा जाना अथवा उसकी व्याख्या करना इस अटूट संदर्भ में ही हो सकता है। इसके बिना घटना अर्थहीन ही रहती है और उसके बारे में जानकारी प्राप्त करना संभव नहीं हो पाता। इन्हीं वैचारिक संदर्भों में समाज के विकास एवं इतिहास को देखना प्रासंगिक है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की मान्यता है कि प्रकृति एक स्थिर, गतिहीन, अपरिवर्तनशील और चिन्तन अवस्था नहीं है, वरन् प्रकृति सतत गतिशीलता, परिवर्तनशीलता और नवीन विकास की दशा में है। प्रकृति में कुछ वस्तुओं का सदैव उद्भव और विकास कुछ की अवनति और विनाश होता है। इसी प्रकार समाज की स्थिति है। अत: द्वन्द्वात्मक प्रणाली के अनुसार घटनाओं और वस्तुओं की विवेचना न केवल उनके अन्त: सम्बन्ध और अन्त: निर्भरता को ध्यान में रखकर की जानी चाहिए, अपितु उनकी गति, परिवर्तन, उद्भव और विकास तथा विनाश को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार परिमाणात्मक परिवर्तनों से गुणात्मक परिवर्तन उत्पन्न होते हैं। छोटे से छोटे परिमाणात्मक परिवर्तन से बड़ा गुणात्मक परिवर्तन संभव है। इस प्रकार का विकास या परिवर्तन धीरे-धीरे अथवा सरल तरीके से नहीं होता, लेकिन शीघ्रता से और एकाएक होता है एवं यह धीरे-धीरे होते रहने वाले संचय का ही स्वाभाविक परिणाम होता है। ऐसा आकस्मिक नहीं होता, वरन् परिमाणात्मक परिवर्तनों के संचित होने के स्वाभाविक परिणाम से होता है। ये परिवर्तन किसी चक्र में ही घूमने वाली गति की तरह नहीं होते। द्वन्द्ववाद के अनुसार विकास की गति निरन्तर आगे बढ़ती हुई होती है। पुरानी गुणात्मक दशा से एक नयी दिशा की ओर आगे बढ़ते रहना ही विकास का सिलसिला है।

भौतिक विज्ञान में प्रत्येक परिवर्तन परिमाण से गुण की ओर होता है और रसायन प्रक्रिया में भी परिमाण सम्बन्धी संरचना के परिवर्तन के फलस्वरूप गुणात्मक परिवर्तन होता है। उदाहरणार्थ पानी का साधारण तापक्रम उसकी तरल स्थिति को प्रभावित नहीं करता। किन्तु जब उस तापक्रम के परिमाण को घटाया या बढ़ाया जाता है तो पानी बर्फ अथवा भाप में परिवर्तित हो जाता है। इसी प्रकार समाज में बढ़ते विरोधों बिगड़ती आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियाँ और क्रांतिकारी आन्दोलन आदि के संचित प्रभाव से समाज में क्रांतिकारी गुणात्मक परिवर्तन हो जाता है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी सिद्धांत की महत्वपूर्ण देन किसी वस्तु या समाज में व्याप्त अन्तर्विरोध को तलाशना है। इसके अनुसार सभी प्राकृतिक और सामाजिक वस्तुओं तथा घटनाओं में आन्तरिक विरोध निहित होता है और यह इनमें स्वाभाविक तौर पर होता है। प्रत्येक वस्तु

अथवा घटना का नकारात्मक एवं सकारात्मक, वाद एवं प्रतिवाद, विकास और विनाश का पहलू होता है। विकास आन्तरिक विरोध या संघर्ष द्वारा ही संचालित होता है एवं सहीं अर्थों में द्वन्द्ववाद वस्तुओं के मूलतत्व में असंगतियों का अध्ययन है।

नवीन और पुरातन का चिर संघर्ष विकास कम की आन्तरिक अन्तर्वस्तु है एवं प्रगति शांतिमय नहीं होती। प्रत्येक विकास की प्रक्रिया की वाद, प्रतिवाद एवं संवाद तीनों अवस्थायें होती हैं। एक अवस्था अपनी पूर्ववर्ती अवस्था का निषेध होती है और फिर धीरे-धीरे उसमें भी विरोध-सक्रिय हो जाते हैं तो उसका भी निषेध करके एक अन्य नई अवस्था को जन्म देते हैं। इस प्रकार निषेध का निषेध की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। यही समाज की विभिन्न अवस्थाओं पर भी लागू होता है।

9.5 ऐतिहासिक भौतिकवाद:

ऐतिहासिक भौतिकवाद मार्क्स का सामाजिक तथा ऐतिहासिक सिद्धांत है। मार्क्स ने हेगेल द्वारा प्रस्तुत इतिहास की आदर्शवादी व्याख्या के स्थान पर अपनी भौतिकवादी द्वन्द्वात्मक प्रणाली को सामाजिक विकास के नियमों की खोज करने के लिये प्रयुक्त किया है। ऐतिहासिक भौतिकवाद समाज के इतिहास का विज्ञान है। सामाजिक विकास एवं परिवर्तन निश्चित नियमों के तहत होता है। इन नियमों के अनुसार एक सामाजिक व्यवस्था दूसरी का स्थान लेती है। मार्क्स ने मानवीय इतिहास के विस्तृत उदाहरण देकर बताया कि किस प्रकार उत्पादन की भौतिक परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण आदिम साम्यवादी, दास, सामन्ती और पूंजीवाद आदि सामाजिक व्यवस्थाएँ एक दूसरे के स्थान पर आयीं।

इतिहास के इस भौतिकवादी सिद्धांत को सामाजिक प्रश्नों पर लागू करने में तीन निदेशक तत्वों को समझना अवाश्यक है।

(1) कार्य -करण सम्बन्ध:

यह एक वैज्ञानिक नियम है कि बिना किसी कारण के कोई कार्य नहीं हो सकता। अत: इतिहास में घटनेवाली प्रत्येक घटना का कोई कारण अवश्य होता है। किसी भी घटना के कारण अनेक हो सकते हैं, किन्तु सही परिप्रेक्ष्य में घटना को समझने के लिए कारणों में भी अंतर स्पष्ट करना आवश्यक होता है। यह अंतर होता है प्रमुख एवं सहायक कारणों के बीच।

(2) समाज एवं भौतिक जीवन-

ऐतिहासिक भौतिकवाद का दूसरा निदेशक तत्व यह है कि मानवीय सिद्धांतों, संस्थाओं, राजनीतिक, वैचारिक और सांस्कृतिक विकास को समाज के भौतिक जीवन की अवस्थायें निर्धारित करती हैं। प्रकृति की तरह समाज में भी दो तत्व होते हैं भौतिक एवं वैचारिक। एक और समाज का भौतिक जीवन है। मनुष्य अपने जीवन संचालन हेतु भौतिक वस्तुओं का उत्पादन करता है। (भोजन, कपड़ा, घर, आवागमन के साधन) जो जीवन के लिए आवश्यक होता है। मनुष्य उत्पादन की प्रक्रिया के तहत निश्चित आर्थिक सम्बन्धों में प्रवेश करता है। सामाजिक जीवन का अन्य तत्व होता है सामाजिक चेतना। इसमें सामाजिक विचार, धारणायें एवं भावनाओं की प्रस्तुति शामिल है जो सामाजिक चेतना के विभिन्न रूपों

राजनीतिक, न्यायिक विचार, नीति, नैतिक, स्तर, कलात्मक कार्य, धार्मिक पथ, दार्शनिक सिद्धांत आदि के रूप में प्रस्फुटित होती है।

सामाजिक विकास की वैज्ञानिक समझ तभी संभव है जब यह निर्धारण हो जाये कि कौन सा पक्ष प्राथमिक है एवं कौन सा माध्यमिक। ऐतिहासिक भौतिकवाद ने समाज विज्ञान को एक वास्तविक विज्ञान बनाया। अत: इसके अनुसार मानव की पहली आवश्यकता खाना, पीना, शरण लेना (घर) एवं कपड़े पहनना है। इसके बाद ही वह राजनीतिक, विज्ञान, कला धर्म आदि की सोचता है। अत: मानव जीवन का पहला कार्य उत्पादन द्वारा अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति है। अत: सामाजिक सम्बन्ध उत्पादन शक्तियों से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। नई उत्पादन शक्तियों के विकसित होने पर उत्पादन प्रणाली के साध-साथ सामाजिक सम्बन्ध भी परिवर्तित हो जाते हैं। समाज के भौतिक जीवन को परिवर्तित करने वाली उत्पादन प्रणाली के आधार पर ही मनुष्य अपने बौद्धिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक सिद्धांतों और संस्थाओं का महल खड़ा करता है।

उत्पादन प्रणाली के दो पक्ष होते हैं। पहला, उत्पादन के साधन जिसमें श्रम, शक्ति, पूँजी, भूमि औजार या उपकरण आदि शामिल होते हैं। दूसरा है उत्पादन के सम्बन्ध अर्थात् उत्पादन का विभाजन एवं वितरण समाज के विभिन्न वर्गों के मध्य किस प्रकार होता है। जब उत्पादन के साधनों एवं सम्बन्धों में परिवर्तन व विकास होता है तब सामाजिक व्यवस्था में भी परिवर्तन स्वाभाविक तौर पर होता है।

(3) मानव की चेतना-

ऐतिहासिक भौतिकवाद का तीसरा निदेशक तत्व मानव की चेतना से संबंधित है। इसके अनुसार भौतिक परिस्थितियों से ही उत्पन्न होने के बाद ही मानवीय सिद्धांत और संस्थायें सामाजिक विकास को प्रभावित करते हैं। किन्तु कोरी चेतना (कल्पना) हवा में लटके रहकर सामाजिक अस्तित्व को प्रभावित नहीं कर सकती। कार्ल मार्क्स के अनुसार मनुष्य की चेतना उसके अस्तित्व को निर्धारित नहीं करती, वरन् उसका सामाजिक अस्तित्व ही उसकी चेतना को निश्चित करता है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद के अनुसार मनुष्य के मस्तिष्क से उत्पन्न होने वाले विचार भौतिक वस्तुओं और सम्बन्धों के पूर्व अस्तित्व पर निर्भर करते हैं, लेकिन एक बार अस्तित्व में आने के पश्चात् माननीय विचारक भौतिक शक्तियों को परिमार्जित विकसित करने की सक्रिय और प्रबल शक्ति बन जाते हैं।

यह सही है कि मनुष्यों की सामाजिक गतिविधियाँ उनके जीवन की भौतिक अवस्थाओं के आधार पर चलती हैं और ये अवस्थायें मनुष्यों के मस्तिष्कों में विचारों के रूप में प्रतिच्छादित होती हैं, किन्तु बदले में विचार जीवन की भौतिक परिस्थितियों को प्रभावित, परिमार्जित एवं विकसित करती हैं।

ऐतिहासिक भौतिकवाद के उपरोक्त तत्वों के आधार पर मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन के नियमों को खोजने का कार्य किया। असल में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को प्रकृति की तरह समाज की क्रियाओं पर लागू करने को ऐतिहासिक भौतिकवाद कहा गया है।

9.5.1 ऐतिहासिक भौतिकवाद समाज का सम्पूर्ण दर्शन :

कार्ल मार्क्स ने इतिहास को विज्ञान की कोटि में लाने का प्रयास किया। कार्लमार्क्स द्वारा प्रतिपादित ऐतिहासिक भौतिकवाद का सिद्धांत अन्य समाज विज्ञानों से कुछ भिन्न है। क्योंकि यह एक सार्वभौम विज्ञान है। उदाहरणार्थ राजनीतिक अर्थशास्त्र, सामाजिक जीवन के एक पक्ष आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन करता है इसी प्रकार न्यायिक विज्ञान राज्य एवं कानून मानव के राजनीतिक और न्यायिक सम्बन्ध का अध्ययन करती है। दूसरे विज्ञान समाज के अन्य अनेक पक्षों जैसे आध्यात्मिक जीवन सौंदर्यशास्त्र साहित्य का इतिहास, साहित्यिक आलोचना आदि का अध्ययन करते हैं। जबकि ऐतिहासिक भौतिकवाद सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों के मध्य सम्बन्धों को उजागर करता है। यह समाज की सम्पूर्ण विकास प्रक्रिया का अध्ययन करता है। मार्क्स ने इतिहास के क्षेत्र को विस्तृत कराने का एक महत्वपूर्ण कार्य किया। मार्क्स के पूर्व के लेखकों का अध्ययन क्षेत्र अधिकांशत : राजनीतिक इतिहास ही था। आर्थिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्षों को मार्क्सवाद ने इतिहास के अनिवार्य अंग के रूप में स्थापित किया।

9.5.2 सामाजिक परिवर्तन की शक्तियाँ एवं प्रक्रिया:

मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद का मुख्य उद्देश्य सामाजिक विकास को समझना है। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि सामाजिक विकास की निर्णायक शक्तियां उत्पादन का विकास एवं परिवर्तन होते हैं, जो मानव क्रिया का परिणाम है। उत्पादन प्रक्रिया समाज की सामूहिक प्रक्रिया होती है। उत: उत्पादन भी एक सामाजिक क्रिया है। मनुष्य सामाजिक उत्पादन का जो कार्य करते हैं उसके दौरान वे आपस में निश्चित प्रकार के सम्बन्ध कायम कर लिया करते हैं। जैसा कि मार्क्स के विचारों से स्पष्ट है कि किसी भी वस्तु में परिवर्तन एवं विकास के तत्व अन्तर्निहित होते हैं उसी प्रकार समाज में परिवर्तन के तत्व समाज में अन्तर्निहित हैं ये तत्व होते हैं उत्पादन की शक्तियां, उत्पादन के सम्बन्ध एवं उत्पादन का स्वरूप। उत्पादन की शक्तियों में जमीन, खान, बागान, कारखाने, पूँजी औजार एवं श्रम आदि सम्मिलित हैं। उत्पादन के सम्बन्ध इस बात पर निर्भर करते हैं कि उत्पादन की शक्तियों पर किसका अधिकार है। उदाहरणार्थ सामंती व्यवस्था में सामंत उत्पादन की शक्तियों का स्वामी होता है एवं किसान की स्थिति कृषि दास, किरायेदार अथवा बंटाईदार की होती है। इन स्थितियों में सामंतों का उत्पादन पर नियंत्रण होता है। उत्पादन का अधिकांश भाग सामंत के अधिकार में होता है एवं किसानों को कठिनता से इतना मिल पाता है कि वह जीवित रह सके। इसी प्रकार पूंजीवादी व्यवस्था में पूंजीपति कारखाने के अधिकांश लाभ का अपहरण कर लेता है। जिन वर्गों का उत्पादन के साधनों पर अधिकार होता है वे उत्पादन को बढ़ाने से रोकते हैं। जबकि उत्पादन की शक्तियाँ आगे बढ़ना हैं। इन दो प्रवृत्तियों में द्वन्द्व होता है। इनमें पहली प्रवृत्ति पुरानी है एवं दूसरी नवीन। ऐतिहासिक भौतिकवाद के अनुसार नवीन पुरातन पर विजय प्राप्त करता है। यही सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया है कि पुरातन उत्पादन प्रणाली को नयी उत्पादन प्रणाली बदलती है जो नयी सामाजिक व्यवस्था को जन्म देती है।

प्रश्न यह उठता है कि जिन वर्गों का उत्पादन के साधनों पर अधिकार होता है वे उत्पादन बढ़ाने के पक्ष में क्यों नहीं होते? पहली बात यह है कि उत्पादन के साधनों का स्वामी

वर्ग प्रचलित उत्पादन प्रणाली से इतना अधिक प्राप्त कर लेता है कि वह उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता ही महसूस नहीं करता। दूसरी बात उत्पादन बढ़ाना एक विकासवादी एवं परिवर्तनवादी प्रवृत्ति है। इसके लिए तकनीकी खोजें जरूरी होती हैं, जिससे उत्पादन प्रणाली बदलती है एवं उत्पादन की शक्तियों का विकास होता है। अत: स्वाभाविक तौर पर उत्पादन के सम्बन्धों में परिवर्तन आता है। यह प्रक्रिया सामाजिक क्रांति को जन्म देती है, जिससे स्वामी वर्ग की सत्ता का अंत हो जाता है। अत: उत्पादन के स्वामी वर्ग आत्महत्या के लिए प्रेरित क्यों होंगे? अब एक अन्य प्रश्न इसके साथ जुड़ा है कि उत्पादन की शक्तियाँ बढ़ना क्यों चाहती हैं? उत्पादन की शक्तियों में मानव श्रम एक महत्वपूर्ण तत्व होता है। किसान या मजदूर जिसे सामंती अथवा पूंजीवादी व्यवस्था में अपने मरण-पोषण में भी कठिनाई अनुभव होती है तो वह अपने जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उत्पादन बढ़ाने का पक्षधर होता है। उत्पादन बढ़ने से रोजगार के अवसर बढ़ते हैं, जिससे किसान या मजदूर पर आश्रित उनके परिवार के सदस्यों को पर्याप्त रोजगार मिलने की संभावना बढ़ती है।

उपरोक्त पक्षों की पुष्टि हेतु हम कह सकते हैं कि उत्पादन के साधनों के स्वामी उत्पादन को नियंत्रित करते समय सामाजिक आवश्यकता को ध्यान में न रखकर अपने लाभ को ध्यान में रखते हैं। अत: साधन विहीन वर्ग इस मत के होते हैं कि उत्पादन समाज की भौतिक आवश्यकता के अनुरूप हो। इस प्रकार दो वर्गों के मध्य संघर्ष होता है। पहला वर्ग यथास्थितिवादी होता है जबकि दूसरा वर्ग परिवर्तनवादी जो समाज को आगे ले जाने का महत्वपूर्ण ऐतिहासिक कार्य करता है।

उत्पादन के साधनों के स्वामी वर्ग द्वारा उत्पादन को नियंत्रित करने का एक तरीका कम उत्पादन करके अधिक लाभ अर्जित करना होता है। उदाहरण के लिए बाजार में किसी वस्तु की माँग सौ है और यदि उत्पादन अस्सी, तब स्वाभाविक तौर पर उपभोक्ताओं के मध्य खरीदने की प्रतियोगिता बढ़ जाती है। इससे वस्तु के मूल्य में वृद्धि हो जाती है तथा उत्पादक कम वस्तु पर भी अधिक लाभ कमा लेता है। इसका विपरीत प्रभाव श्रमिकों पर पड़ता है। कम उत्पादन होने पर श्रमिकों को रोजगार कम मिलेगा एवं उत्पादित माल का मूल्य बढ़ जाने से श्रमिक अपने उपभोग के लिए वस्तु खरीदने में असमर्थ रहता है, क्योंकि उसकी क्रय शक्ति इसके अनुकूल नहीं होती। इन स्थितियों में श्रमिक चाहेगा कि उत्पादन बड़े जिससे उसे रोजगार के अधिक अवसर प्राप्त हों तथा उसे अपने उपभोगार्थ पर्याप्त वस्तुऐं प्राप्त हो सकें।

ऐतिहासिक भौतिकवाद बताता है कि उत्पादन से साधनों का स्वामी उत्पादन के साधन विहीन वर्गों का शोषण करता है। अर्थात् श्रमिक को उसके श्रम का मूल्य नहीं मिलता। औद्योगिक पूँजीवाद में श्रमिक के श्रम को पूर्व में ही खरीद लिया जाता है, जिसका मूल्य पूंजीपति निर्धारित करता है। इस स्थिति में श्रमिक अपने श्रम का वास्तविक मूल्य प्राप्त करने से वंचित रह जाता है। अत: श्रमिक वर्ग अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिये संघर्ष करता है जो सामाजिक परिवर्तन का आधार बनता है। इसलिए कार्लमार्क्स का कहना था कि पूंजीवाद स्वयं अपनी कब्र खोदता है। औद्योगिक श्रमिक जिसे कार्ल मार्क्स सर्वहारा वर्ग की संज्ञा देता है के पास खोने के लिए पांवों की बेड़ियां एवं जीतने कि लिए संसार होता है। इसी आधार पर मार्क्स ने पूंजीवादी समाज का समाजवादी समाज में परिवर्तन का सिद्धांत स्थापित किया।

मार्क्स के अनुसार पूंजीवादी व्यवस्था में वर्ग और वर्ग संघर्ष अधिक स्पष्ट और तीव्र हो जाता है। पूंजीवादी व्यवस्था शोषण पर आधारित अंतिम व्यवस्था होगी। इस व्यवस्था में आर्थिक वर्ग तथा समाज के अन्य मेहनतकश वर्ग की निर्धनता, भुखमरी और बेरोजगारी बढ़ती ही जायेगी क्योंकि उत्पादन का उद्देश्य समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं, केवल लाभ अर्जित करना होता है। लाभ शोषण पर आधारित इस व्यवस्था में समय-समय पर आर्थिक संकट आते रहते हैं, और एक ऐसी स्थिति आती है कि शोषित वर्ग इस शोषण के जुए को उतार कर फेंक देता है। यही पूंजीवाद से समाजवादी क्रांति का काल होता है।

इतिहास की मार्क्सवादी भौतिकवादी व्याख्या ने पहली बार सामाजिक, परिवर्तन के कारणों को ढूंढ निकालने का महत्वपूर्ण कार्य किया। इन्हीं संदर्भों में ऐतिहासिक परिवर्तनों को समझने की वैज्ञानिक दृष्टि समाजशास्त्रियों को मिली। अत: उत्पादन के साधन एवं उत्पादन के सम्बन्ध ही सामाजिक परिवर्तन की आधारभूत शक्तियाँ कही जा सकती हैं।

9.5.3 वर्ग और वर्ग संघर्ष :

मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद का मुख्य आधार वर्ग और वर्ग संघर्ष को समझना रहा है। उत्पादन के सम्बन्ध समाज में वर्गों को जन्म देते हैं। मार्क्स की मान्यता थी कि सभी इतिहास वर्ग संघर्षों का इतिहास है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि किसी भी युग में जीविकोपार्जन के लिए उत्पादन के सम्बन्धों के कारण मनुष्य अलग-अलग वर्गों में विभाजित हो जाते हैं। अब तक के मानवीय इतिहास में केवल आदिम साम्यवाद का युग ही वर्गों और आर्थिक शोषण से रहित युग था। किन्तु धीरे-धीरे उत्पादन के साधनों का विकास और परिवर्तन के साथ ही उत्पादन के सम्बन्धों में परिवर्तन आ गया और वर्ग भेद तथा आर्थिक शोषण पर आधारित दास व्यवस्था का जन्म हुआ। तब से आज तक प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था में दो वर्गों शोषक और शोषित का अस्तित्व रहा है। अल्पसंख्यक शोषकों ने छल और चालाकी से समाज के उत्पादन के साधनों पर अधिकार करके घोर अमानवीय शोषण का सूत्रपात कर दिया। शोषक और शोषित ये वर्ग हैं, दास व्यवस्था में दासों के मालिक और दास, सामन्ती व्यवस्था में सामन्त एवं अर्ध-दास किसान तथा पूंजीवादी व्यवस्था में पूंजीपति और मजदूर। इन वर्गों के संघर्ष का परिणाम रहा। समाज का विकास। अत: वर्ग संघर्ष समाज में चलने वाली एक निरन्तर प्रक्रिया है। इसी आधार पर मार्क्स की स्पष्ट मान्यता थी कि नेया का सभी मानव इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है।

9.5.4 ऐतिहासिक युग :

पूर्वोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि समाज के विकास का इतिहास वास्तव में उत्पादन प्रणाली के विकास का इतिहास अर्थात् उत्पादक शक्ति और मनुष्यों के उत्पादन सम्बन्ध के विकास का इतिहास है। यह केवल कुछ राजा-रानियों, विजेताओं अथवा शासकों के व्यक्तिगत कारनामों का विवरण मात्र नहीं है, इसलिए, ऐतिहासिक विज्ञान का प्रमुख कार्य उत्पादन के नियमों अर्थात् उत्पादन शक्ति तथा उत्पादन के सम्बन्धों के विकास के आधार पर समाज के विकास के नियमों की खोज करके उन्हें स्पष्ट और प्रकट करना है। इतिहास तब ही

विज्ञान बन सकता है जबकि वह उत्पादन प्रणाली और उससे संबन्धित सामाजिक व राजनीतिक संस्थाओं, कला, धर्म, दर्शन, साहित्य और संस्कृति के साथ-साथ ही भौतिक मूल्यों का उत्पादन करने वाले मेहनतकश जन समूहों का अध्ययन, विश्लेषण तथा निरूपण करे और केवल कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के किया-कलापों का स्तुतिगान मात्र बनकर न रह जाये।

इतिहास की इस भौतिकवादी व्याख्या के अनुसार मार्क्स ने मानवीय इतिहास को छः युगों में बांटा है। पहला, आदिम युग को मार्क्स ने आदिम साम्यवादी युग कहा है। यह मानव इतिहास का प्रारम्भिक युग है। इस युग में उत्पादन के साधन, अविकसित और भौंडे थे, जैसे पत्थर के औजार, तीर कमान आदि। इन उत्पादन के साधनों का जीविका उपार्जन के लिए संयुक्त श्रम के द्वारा ही प्रयोग किया जा सकता था। इसलिए उत्पादन के साधनों और उनसे प्राप्त होने वाली वस्तुओं पर सबका स्वामित्व होता था। इस युग में मनुष्य शिकार और फल-फूल खाकर अपना जीवन निर्वाह करता था। प्रकृति की प्रत्येक वस्तु पर सबका समान अधिकार था। समाज में वर्गों का निर्माण नहीं हुआ था, तथा यह युग सब प्रकार के शोषण से मुक्त था। दूसरा युग दास युग था। खेती, पशुपालन और धातु के औजारों के आविष्कार और प्रचलन होने के साथ ही उत्पादन प्रणाली और उत्पादन सम्बन्ध भी परिवर्तित हो गये। व्यक्तिगत सम्पति एकत्रित होने लगी जिसे और अधिक विकसित करने के लिए दासों की आवश्यकता पड़ने लगी। समाज में वर्गों का निर्माण प्रारंभ हो गया और दासों के स्वामी तथा दास दो आर्थिक वर्ग बन गये एवं आर्थिक शोषण आरंभ हुआ। दास का काम उत्पादन करना और स्वामी का काम उसके श्रम से उत्पन्न की हुई वस्तुओं का आनंद उठाना था। इस प्रकार एक अल्पसंख्यक समुदाय ने बहुसंख्यक मेहनतकश समुदाय को दास बनाकर उसका शोषण प्रारंभ न कर दिया और इस प्रकार वर्ग-संघर्ष की नींव पड़ गयी।

तीसरा युग सामन्ती युग था। कालान्तर में उत्पादन के साधनों एवं स्वरूप में अधिक परिवर्तन हुए। लोहे के हल तथा अन्य औजारों का प्रचलन हुआ। कृषि के क्षेत्र में विकास हुआ। इस युग में उत्पादन के साधनों जैसे भूमि, प्राकृतिक साधनों के श्रोत और मानवीय श्रम आदि पर कुछ सामन्तों का आधिपत्य हो गया। भूमि पर अधिकार कर सामंतों ने बड़ी संख्या में भूमिहीन किसानों को अर्ध-दास बना दिया। निजी सम्पत्ति की धारणा इस युग में और अधिक प्रबल हो गयी। इस युग में कुछ सुविधाओं के बदले में धार्मिक पुरोहितों ने सामंतों के गुणगान किये और राजा के दैवीय अधिकार के सिद्धांत का नारा संगठित धर्म की सहायता से बुलंद किया। इस युग के सामंतों एवं किसानों के दो प्रमुख वर्ग बन गये। और उनमें वर्ग संघर्ष चलता रहा।

चौथा युग आज का पूंजीवादी युग है। विज्ञान के विकास के साथ ही मशीनों का आविष्कार तथा बड़े-बड़े उद्योगों का जन्म हुआ, जिसके साथ ही पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का युग प्रारंभ हो गया। इस व्यवस्था में बड़े-बड़े पूंजीपतियों का उत्पादन के साधनों पूंजी, मशीन, भूमि, खान, कारखानें, प्राकृतिक सम्पदा आदि पर आधिपत्य है। दूसरी ओर श्रमिक हैं जो अपने परिवार के सदस्यों तथा स्वयं को भूख से मरने से बचाने के लिए अपनी श्रम शक्ति को पूंजीपतियों के हाथों बेचने को विवश हो जाते हैं। मुनाफे की भूख से पागल पूंजीपति जो स्वयं

हृदयहीन और हर होता है, वैज्ञानिक साधनों, राज्य की मशीन, संगठित धर्म और पैसों से खरीदे, बुद्धिजीवियों की सहायता से अपने शोषण को बनाये रखने और उसे अधिक तीव्र करने में लगा रहता है। ऐतिहासिक भौतिकवाद की धारणा के अनुसार यह पूंजीवादी युग मानवीय शोषण पर आधारित अंतिम सामाजिक आर्थिक व्यवस्था है। इसके बाद पांचवे ऐतिहासिक युग समाजवाद के युग का सूत्रपात हो गया है जो छठे ऐतिहासिक युग साम्यवादी व्यवस्था की ओर जाने वाला है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि मार्क्स ने मानव इतिहास का काल विभाजन वैज्ञानिक आधारों पर किया। प्रत्येक युग का निर्धारण उत्पादन के स्वरूप एवं सम्बन्धों के आधार पर किया है।

9.6 इकाई सारांश एवं अभ्यास कार्य :

इतिहास दर्शन की दो प्रमुख धाराएँ : आध्यात्मवादी एवं भौतिकवादी है। कार्ल मार्क्स ने भौतिकवादी इतिहास को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने का कार्य किया।

इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या के आधार भौतिक तत्व, तर्क एवं विज्ञान हैं। आध्यात्मवाद कल्पना, भावना, ईश्वर, भाग्य, विशेष व्यक्तित्व आदि को इतिहास की व्याख्या के आवश्यक तत्व मानता है जो पूर्णत : अवैज्ञानिक मत है।

मार्क्स ने इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की पद्धति से की है। प्रकृति विज्ञान की द्वन्द्वात्मक क्रिया को समाज विज्ञान पर लागू किया। जिस प्रकार प्रकृति गतिशील एवं परिवर्तनीय है। उसी प्रकार समाज भी गतिशील एवं परिवर्तनीय है। प्रकृति एवं समाज दोनों में ही परिवर्तन निश्चित नियमों के तहत होते हैं। ये परिवर्तन किसी वस्तु अथवा समाज में व्याप्त अन्तर्विरोधों के तहत होते हैं।

मार्क्स द्वारा प्रतिपादित इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या को ऐतिहासिक भौतिकवाद के नाम से जाना जाता है। इसके अनुसार कार्य-कारण का सीधा सम्बन्ध है। ऐतिहासिक भौतिकवाद के अनुसार समाज के भौतिक जीवन की अवस्थायें मानवीय सिद्धांतों, संस्थाओं, राजनीतिक, वैचारिक और सांस्कृतिक विकास का आधार होती हैं। समाज के भौतिक जीवन का निर्धारण उत्पादन प्रणाली एवं उत्पादन सम्बन्ध करते हैं। भौतिक जीवन से ही मानवीय चेतना उत्पन्न होती है। यह चेतना सामाजिक विकास का आधार बनती है। मार्क्स ने इतिहास को विज्ञान की कोटि में लाने का प्रयास किया है। ऐतिहासिक भौतिकवाद समाज का सम्पूर्ण दर्शन है। इसके अनुसार इतिहास का क्षेत्र समाज के सभी पक्षों का अध्ययन है।

मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन की शक्तियों को ढूंढ निकालने का महत्वपूर्ण कार्य किया। मानव जो उत्पादन करता है उसके दौरान वह आपस में निश्चित प्रकार के सम्बन्ध कायम करता है। उत्पादन के सम्बन्ध समाज में वर्गों को जन्म देते हैं। विभिन्न वर्गों के मध्य व्याप्त अन्तर्विरोध समाज के परिवर्तन का कारण बनते हैं। प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था में उत्पादन के साधनों के स्वामी साधन हीन वर्गों का शोषण करते हैं। शोषित स्वाभाविक तौर पर शोषक के खिलाफ लड़ता है। इस लड़ाई की परिणिती सामाजिक विकास या सामाजिक क्रांति के रूप में होती मार्क्स की मान्यता थी कि आदिम साम्यवाद के बाद दास प्रथा से लेकर आज तक का युग वर्गों

में बँटा हुआ है। दो विरोधी वर्गों शोषक एवं शोषित के मध्य संघर्ष रहा है। अत: दुनियां का सम्पूर्ण इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद के अनुसार मार्क्स ने सम्पूर्ण मानवीय इतिहास को छ: युगों में बाँटा है। पहला युग आदिम साम्यवादी, दूसरा दास युग, तीसरा समांतवादी, चौथा पूंजीवादी, पांचवा समाजवादी एवं छठा साम्यवादी।

अभ्यास कार्य :

(1) आध्यात्मवादी एवं भौतिकवादी इतिहास दर्शन का तुलनात्मक विवरण दीजिए। (300 शब्द)

(2) इतिहास के विकासवादी सिद्धांत की व्याख्या कीजिये। (100 शब्द)

(3) द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का विश्लेषण कीजिये। (200 शब्द)

(4) ऐतिहासिक भौतिकवाद के मुख्य निदेशक तत्व कौन से हैं? **(200 शब्द)**

(5) मार्क्स द्वारा प्रतिपादित सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया क्या है? **(200 शब्द)**

(6) ऐतिहासिक भौतिकवाद के अनुसार इतिहास का युगनिर्धारण किस प्रकार किया गया है? **(300 शब्द)**

9.7 संदर्भ अध्ययन सामग्री

(i) Maurice Cornforth : Dialectical Materialism

(ii) G. Glezerman & G. Kursanov : Historical Materialism

(iii) G. Plekhanov : The Development of the Monist view of History (Also in Hindi)

(iv) Karl Marx and F. Engels : Selected writings, in 3 Vols. (Also in Hindi)

(v) J.V. Stalin : Dialectical

(vi) F. Engels : Dialectics of Nature (Also in Hindi)

(vii) F. Engels : Origin of Family, Private property & State (Also in Hindi)

(viii) यशपाल : मार्क्सवाद : मार्क्सवाद

(ix) राहुल सांकृत्यायन : दर्शन-दिग्दर्शन

MAHI-04/ISBN13/978-81-8496-263-5